आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-२० * अंक-२ * अक्टुबर-२०२५

शासननायक श्री महावीरस्वामी

श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममंदिर, सोनगढ़

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● जीवद्रव्यके स्वभावकी महिमा अर्थात् स्वरूपकी महिमा सबसे उत्कृष्ट है। कैसी है महिमा ? आश्चर्यसे आश्चर्यरूप है। वह आश्चर्य क्या है ? विभावपरिणाम शक्ति विचारने पर मोह, राग, द्वेषका उदय होकर स्वरूपसे भ्रष्ट होकर परिणमता है, ऐसा प्रकट ही है, जीवका शुद्धस्वरूप विचारने पर चेतनामात्र स्वरूप है, रागादि अशुद्धपना विद्यमान नहीं है।१२०। (श्री राजमल्लजी, कलशटीका, कलश-२७४)

● देखो ! आकाशमें एक चन्द्र है, एक उसका निमित्त पाकरके पानीका स्वच्छ विकाररूप चंद्र है। दूसरा एक लाल रंग है, दूसरा (इस तरफ) एक उसका निमित्त पाकरके स्फटिककी स्वच्छता विकाररूप लाल है। फिर मोर एक स्कंध है, दूसरा (इस तरफ) एक उसका निमित्त पाकरके दर्पणकी स्वच्छता विकाररूप मोर है। उसी प्रकार गुणस्थान, मार्गणादि एक पुद्गलस्कंध संसार है, दूसरा (इस तरफ) एक उसका निमित्त पाकरके जीवकी स्वच्छ विकाररूप चेतना संसार है।१२१।

(श्री दीपचंदजी, आत्मअवलोकन, पृ. १२१)

● जैसे वास्तवमें स्वयं ही एकरसवाली नमककी डली नाना प्रकारके व्यंजनोंमें (शाकोंमें) मिलने पर भी भिन्न रसवाली हो जाती नहीं, उसी ही प्रकार जीव स्वयं ही अद्वैतरूप होकरके सर्व अवस्थाओंमें चिदात्मक ही है, वह परद्रव्यके संयोग-वियोगपूर्वक होनेवाले जीवादि नव तत्त्वोंमें विमिश्रित होकरके भी अशुद्ध द्वैतरूप हो नहीं जाता।१२२। (श्री राजमल्लजी, श्री पंचाध्यायी भाग-२, गाथा-१७२)

● आत्मासे भिन्न जो अजीव पदार्थ है, उसके लक्षण दो तरहसे हैं, एक जीव सम्बन्धी, दूसरा अजीव सम्बन्धी। जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूप हैं वे तो जीव सम्बन्धी हैं और पुद्गलादि पाँच द्रव्यरूप अजीव जीवसम्बन्धी नहीं हैं, अजीव सम्बन्धी ही हैं इसलिये अजीव हैं, जीवसे भिन्न हैं, इस कारण जीवसे भिन्न अजीवरूप पदार्थ हैं उनको अपने मत समझो। यद्यपि रागादि परिणाम जीवमें ही उपजते हैं, इससे जीवके कहे जाते हैं परन्तु वे कर्मजनित हैं, पर पदार्थ (कर्म)के सम्बन्धसे हैं, इसलिये पर ही समझो।१२३। (श्री योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश, अधि-१, गाथा-३०)

दंसणमूलो धम्मो। ધર્મનું મૂળ સમ્યગ્દર્શન છે.

वर्ष-20
अंक-2

वि. संवत
2081

October
A.D. 2025

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

भगवान श्री महावीरस्वामी मोक्षकल्याणक दिन

आज दीपावलीका दिन है। भगवान महावीरका आत्मा आज पूर्ण शुद्धताको प्राप्त हुआ। पूर्ण शुद्धताको प्राप्त हुए उसका नाम मोक्ष कहा जाता है। केवलज्ञान तो था अब पूर्ण स्वभाव प्रकट हो गया। केवलीकी भी पर्यायमें ज्ञान, दर्शन, आनंदकी कुछ पर्यायमें अभी अशुद्धता शेष थी। वह जब आज स्थिर हुए अजोगरूप परिणमन हुआ, पर्यायमें अजोगपनेका परिणमन हुआ अल्प अशुद्धता थी उसका भी व्यय हो गया और पूर्ण शुद्धता प्रकट हुई उसका नाम मोक्ष है। यह (अश्विन) चतुर्दशीकी पीछली दो रात्रिसे तो भगवान वहाँ (पावापुरी) बाह्यसे तो स्थिर हो गये थे, अंतरकी अंतिम स्थितिमें स्थिर। मात्र पाँच अक्षर जितना शेष काल रहा। यह सब सहज हो जाता है, यह मैं करता हूँ ऐसा वहाँ नहीं है। सहज पर्यायकी परिणति वहाँ शुद्ध हो जाती है और यहाँ देहसे मुक्ति हो जाती है। मुक्ति तो यहाँ हुई है यहाँसे एक समयमें सिद्धमें गमन। सिद्धपना होना, यहाँ गतिका होना और वहाँ पहुँचना एक समयमें। ऐसी आत्माकी एक समयकी पर्याय शुद्ध हुआ स्वभाव सिद्धपनेको प्राप्त होती है। उसका फिर इन्द्रोंने आकर महोत्सव किया उसको यह दीपावली कहते है। वास्तवमें तो उन्होंने दिवस अपना स्वकाल किया उसका नाम दीपावली। स्वयंके स्वकालकी पर्याय पूर्ण हुई उसका नाम दिपावली। बाह्यमें इन्द्रोंने पूजादि और भक्ति किया उसे व्यवहार दीपावली कहनेमें आती है।

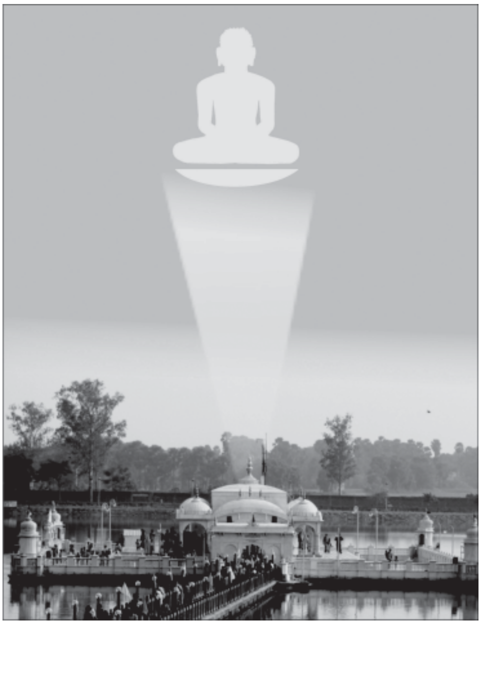

[दि. २२-१०-२५को नूतन वर्षका सुप्रभात दिन है, यह दिन स्वर्णपुरीमें पूजा, भक्ति आदि विशेष भावोंसे मनाया जाता है। सभी तीर्थंकर भगवंत, जिनवाणी माता, निर्ग्रन्थ भावलिंगी संतका उदय सुप्रभातरूप तो है, परंतु अपने लिए तो परमोपकारी कहानगुरुदेव व भगवती माताका उदय सुप्रभात स्वरूप है, वे सभी हमारे जीवनमें रत्नत्रयरूप सुप्रभात प्रगटावें यही भावना...। इसी भावनाकी पुष्टी हेतु इस दिनके उपलक्ष्यमें यहाँ भगवान पद्मनंदी आचार्यदेवकृत सुप्रभात स्तोत्र द्वारा अर्हत् भगवन्का केवलज्ञान, केवलदर्शनरूप सुप्रभातकी स्तुति करते हैं।]

(शार्दूलविक्रीडित)

निःशेषावरणद्वयस्थितिनिशाप्रान्ते ऽन्तरायक्षया[यो]-
द्द्योते मोहकृते गते च सहसा निद्राभरे दूरतः।
सम्यग्ज्ञानदृगक्षियुग्ममभिता विस्फारितं यत्र त-
ल्लब्धं यैरिह सुप्रभातमचलं तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ।।१।।

अर्थ : शीघ्र ही मोह कर्मसे निर्मित निद्राभारके सहसा दूर हो जाने पर जिस सुप्रभातमें समस्त ज्ञानावरण व दर्शनावरण इन दो आवरण कर्मोंकी स्थितिरूप रात्रिका अन्त होकर व अन्तराय कर्मके क्षयरूपी प्रकाशके हो जानेपर समीचीन ज्ञान और दर्शनरूप नेत्रयुगल सब ओर विस्तारको प्राप्त हुए हैं अर्थात् खुल गए हैं ऐसे उस स्थिर सुप्रभातको जिन्होंने प्राप्त कर लिया है उन जिनेन्द्र देवोंको नमस्कार हो।।१।।

यत्सच्चक्रसुखप्रदं यदमलं ज्ञानप्रभाभासुरं लोकालोकपदप्रकाशनविधिप्रौढं प्रकृष्टं सकृत्।
उद्भूते सति यत्र जीवितमिव प्राप्तं परं प्राणिभिः त्रैलोक्याधिपतेर्जिनस्य सततं तत्सुप्रभातं स्तुवे ।।२।।

अर्थ : जो सुप्रभात सच्चक्र अर्थात् सज्जनसमूहको सुख देनेवाला (अथवा उत्तम चक्रवाक पक्षियोंके लिए सुख देनेवाला), अथवा समीचीन चक्ररत्नको धारण करनेवाले चक्रवर्तीके सुखको देनेवाला), निर्मल, ज्ञानकी प्रभासे प्रकाशमान, लोक एवं अलोकरूप स्थानके प्रकाशित करनेकी विधिमें चतुर और उत्कृष्ट हैं तथा जिसके एक बार प्रकट होने पर मानो प्राणी उत्कृष्ट जीवनको प्राप्त कर लेते हैं; ऐसे उस तीन लोकके अधिपतिस्वरूप जिनेन्द्र भगवानके सुप्रभातकी मैं निरन्तर स्तुति करता हूँ।।२।।

एकान्तोद्धतवादिकौशिकशतैर्नष्टं भयादाकुलेर्जातं यत्र विशुद्धखेचरनुतिव्याहारकोलाहलम्।
यत्सद्धर्मविधिप्रवर्धनकरं तत्सुप्रभातं परं मन्ये ऽर्हत्परमेष्ठिनो निरुपमं संसारसंतापहृत् ।।३।।

अर्थ : जिस सुप्रभातमें सर्वथा एकान्तवादसे उद्धत सैकड़ों प्रवादीरूप उल्लू पक्षी भयसे व्याकुल होकर नष्ट हो चुके हैं, जो आकाशगामी विद्याधरों एवं देवोंके द्वारा की जानेवाली विशुद्ध स्तुतिके शब्दसे शब्दायमान है, जो समीचीन धर्मविधिको बढ़ानेवाला है, उपमासे रहित अर्थात् अनुपम है, तथा संसारके संतापको नष्ट करनेवाला है, ऐसे उस अरहंत

परमेष्ठीके सुप्रभातको ही मैं उत्कृष्ट सुप्रभात मानता हूँ।।३।।

सानन्दं सुरसुन्दरीभिरभितः शक्रैर्यदा गीयते प्रातः प्रातरधीश्वरं यदतुलं वैतालिकैः पठ्यते।
यच्चाश्रावि नभश्चरैश्च फणिभिः कन्याजनाद्गायतस्तद्वन्दे जिनसुप्रभातमखिलत्रैलोक्यहर्षप्रदम् ।।४।।

अर्थ : इन्द्रोंके साथ देवांगनाएँ जिस सुप्रभातका सब ओर गान करती हैं, बंदीजन (चारण लोग) अपने स्वामीको लक्ष्य करके जिस अनुपम सुप्रभातकी स्तुति करते हैं, तथा जिस सुप्रभातको विद्याधर और नागकुमार जातिके देव गाती हुई कन्याजनोंसे सुनते हैं; इस प्रकार समस्त तीनों लोकोंको हर्षित करनेवाले उस जिन भगवान्‌के सुप्रभातकी मैं वन्दना करता हूँ।।४।

उद्द्योते सति यत्र नश्यति तरां लोकेऽघचौरोऽचिरं दोषेशोऽन्तरतीव यत्र मलिनो मन्दप्रभो जायते।
यत्रानीतितमस्ततेर्विघटनाज्जाता दिशो निर्मला वन्द्यं नन्दतु शाश्वतं जिनपतेस्तत्सुप्रभातं परम् ।।५।।

अर्थ : जिस सुप्रभातका प्रकाश हो जाने पर लोकमें पापरूप चोर अतिशय शीघ्र नष्ट हो जाता है, जिस सुप्रभातके प्रकाशमें दोषेश अर्थात् अतिशय मलिन होने पर भी भीतर मोहरूप चंद्रमा मंदभाववाला हो जाता है, तथा जिस सुप्रभातके होने पर अन्यायरूप अन्धकारसमूहके नष्ट हो जानेसे दिशायें निर्मल हो जाती है; ऐसा वह वन्दनीय व अविनश्वर जिन भगवान्‌का उत्कृष्ट सुप्रभात वृद्धिको प्रात हो।।५।।

मार्गं यत्प्रकटीकरोति हरते दोषानुषङ्गस्थितिं लोकानां विदधाति दृष्टिमचिरादर्थावलोकक्षमाम् ।
कामासक्तधियामपि कृशयति प्रीतिं प्रियायामिति प्रातस्तुल्यतयापि कोऽपि महिमापूर्वः प्रभातोऽर्हताम् ।६।

अर्थ : अरहंतोंका प्रभात मार्गको प्रकट करता है, दोषोंके सम्बन्धकी स्थितिको नष्ट करता है, लोगोंकी दृष्टिको शीघ्र ही पदार्थके देखनेमें समर्थ करता है, तथा विषयभोगमें आसक्तबुद्धि प्राणियोंकी स्त्रीविषयक प्रीतिको कृश (निर्बल) करता है। इस प्रकार वह अरहंतोंका प्रभात यद्यपि प्रभातकालके तुल्य ही है; फिर भी उसकी कोई अपूर्व महिमा है।।६।।

यद्भानोरपि गोचरं न गतवान् चित्ते स्थितं तत्तमो भव्यानां दलयत्तथा कुवलये कुर्याद्विकाशश्रियम् ।
तेजः सौख्यहतेरकर्तृ यदिदं नक्तंचराणामपि क्षेमं वो विदधातु जैनमसमं श्रीसुप्रभातं सदा ।।७।।

अर्थ : भव्य जीवोंके हृदयमें स्थित जो अंधकार सूर्यके गोचर नहीं हुआ है अर्थात् जिसे सूर्य भी नष्ट नही कर सका है उसको जो जिन भगवानका सुप्रभात नष्ट करता है, जो कुवलय (भूमण्डल) के विषयमें विकासलक्षी (प्रमोद) को करता है–लोकके सब प्राणियोंको हर्षित करता है, तथा जो निशाचरों (चन्द्र एवं राक्षस आदि)के भी तेज और सुखका घात नहीं करता है; वह जिन भगवानका अनुपम सुप्रभात सर्वदा हम सबका कल्याण करें।।७।

भव्याम्भोरुहनन्दिकेवलरविः प्राप्नोति यत्रोदयं दुष्कर्मोदयनिद्रया परिहृतं जागर्ति सर्वं जगत् ।
नित्यं यैः परिपठ्यते जिनपतेरेतत्प्रभाताष्टकं तेषामाशु विनाशमेति दुरितं धर्मः सुखं वर्धते ।।८।।

(शेष देखे पृष्ठ ३१ पर)

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा ७७-७८ के प्रवचनमेंसे)

पुण्य दुःखका साधन है

इस प्रकार पुण्य और पापमें अंतर नहीं ऐसा जो मानता नहीं है वह मोहमें वर्तता है और घोर अपार संसारमें परिभ्रमण करता है।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी भक्तिका भाव, दया आदिके भाव वह शुभ उपयोग है, और हिंसा, असत्य, चोरी आदिके भाव अशुभ उपयोग है। शुभ उपयोग वह इन्द्रिय सुख देता है और अशुभ उपयोग प्रतिकूलताएँ देता है। आगेकी गाथामें साबित हुआ कि इन्द्रिय सुख वह भी दुःखका साधन है। इसलिये शुभ और अशुभभावोंमें अनात्मधर्मपना समान है, परमार्थसे दोनोंमें कोई अंतर नहीं है।

पुण्य और पापसे मिलनेवाला इन्द्रिय सुख और इन्द्रिय दुःखमें परमार्थसे कोई अंतर नहीं है। पुण्य और पाप आत्माका धर्म नहीं होनेसे, दोनों आस्रव होनेसे परमार्थसे दोनोंमें कोई अंतर नहीं है इसलिये पुण्य और पापमें द्वैतपना होता नहीं है, दोनों एक ही है। इस प्रकार होने पर भी जो जीव पुण्य और पापमें अंतर मानता है अर्थात् वह पुण्य ठीक है, करने जैसा है, और उसको करते करते धर्म होगा—ऐसा पुण्य और पापसे पृथक् करता है वह घोर संसारी है क्योंकि पुण्य और पाप दोनों आस्रव तत्त्व है।

बेडी सुवर्णकी हो या लोहेकी, दोनों बंधनका की कार्य करती है। वैसे पुण्य हो या पाप दोनों बंधका ही कारण है—ऐसा ज्ञान नहीं होनेके कारण स्वयंके ज्ञानस्वभावकी रुचि छोड़कर अज्ञानी पुण्यकी रुचि करता है और नववीं ग्रैवेयकके देवपद तथा विशाल विभूतिके कारणभूत शुभभावका-पंचमहाव्रतका पालन, देव, गुरु, शास्त्रकी भक्ति आदिका घनिष्ठतासे अवलम्बन लेता है। वह जीव शुभकी क्रियामें लीन हो गया है। मनके अवलम्बन रहित आत्मा चैतन्यमूर्ति निर्मल दीवार है वह शुद्धका अवलम्बन छोड़कर अज्ञानी जीव स्वयं चित्तरूपी भूमिको पुण्यसे रंगकर मलिन तथा विकृत कर दी है।

स्वयंके ज्ञातास्वभावमेंसे शुद्ध, अमृतके निर्झररूपी व्यक्तता निकलनी चाहिये लेकिन

अज्ञानी जीव शुद्धोपयोगको व्यक्त करता नहीं और विकार उत्पन्न करता है। वह अज्ञानी शुद्धोपयोगका तिरस्कार करता है और हमेशाके लिये शारीरिक दुःखका ही अनुभव करता है। जहाँ तक वह ऐसा ही ऐसा अज्ञानभाव चालु रखेगा तब तक संसारमें भटकनेवाला है।

यहाँ आचार्य भगवानने ज्ञानस्वभावकी उग्रता बतलाते हुए कहा कि ज्ञानतत्त्वका अर्थात् शुद्धोपयोगका फल वह सिद्धि और पुण्यतत्त्वका अर्थात् अशुद्ध उपयोगका फल क्रमशः निगोद है। पुण्यकी रुचिवाला जीव ज्ञानका तिरस्कार करता है इसलिये वह क्रमशः निगोददशाको प्राप्त होगा। वहाँ ज्ञानकी हीनमें हीन दशा है। 'हमेशाके लिये' ऐसा जो कहा है उसका कारण यह है कि दो इन्द्रियमेंसे पंचेन्द्रियपना और पंचेन्द्रियपनामेंसे देवसे नारकी तक सभी त्रस भवोंकी स्थिति कुल दो हजार सागर है वह घोर संसार नहीं है। संसारका अधिकतर समय निगोदमें होता है इसलिए 'हमेशाके लिये'का अर्थ यहाँ निगोद होता है।

पुनः ''शारीरिक दुःखका ही अनुभव करता है''–ऐसा कहा है उसका अर्थ यह है कि शुभकी रुचिवालेको अनुक्रमसे मात्र शरीरका ही संयोग रहेगा। मन, वाणीका भी संयोग रहेगा नहीं कि जो दशा निगोदकी है वहाँ मात्र शरीर–मात्र एक स्पर्शेन्द्रिय ही है। स्वयंके ज्ञानस्वभावका सामर्थ्य तीनकालके पदार्थको जाननेका है उसका सत्कार छोड़कर पुण्यकी रुचि करके जो जीव रुकता है वह भविष्यमें अनुक्रमसे निगोदमें ही जायेगा और अनंतकाल रहेगा। ज्ञानमें संसार नहीं है और पुण्यकी रुचिमें संसारका अंत आता नहीं है।

शुद्धोपयोग सर्व दुःखका क्षय करता है

शुभभाव और अशुभभाव दोनों समान है ऐसा निश्चय करके, समस्त राग-द्वेषके दोहरापनेको दूर करके, सर्व दुःखका क्षय करनेका दृढ़ विचार करके, मुनि शुद्धोपयोगमें बसते है। यहाँ मुख्यरूपसे मुनिकी बात है। श्रावक राग-द्वेषको मान्यतामेंसे दूर करता है। शुभाशुभ स्वयंका स्वरूप नहीं है ऐसा निर्णय करके आत्मामें रमणता करने हेतु मुनि शुद्धोपयोगको अंगीकार करते है।

शुभ और अशुभभाव दोनों समान है। वह आत्माका स्वरूप नहीं है। दोनों भाव ज्ञानस्वरूपसे विरुद्धभाव है और कर्म उत्पन्न करे ऐसी जातिके है। दोनों भाव गहरे कुआ समान है। पुण्यको विषतरुके फल कहा है। दोनों भावोंसे रहित ज्ञानस्वभाव है ऐसे वस्तुस्वरूपको यथार्थ पहिचानना चाहिये।

जिनसिंह परम कृतकृत्य भये,
निःशल्य मल्लि हम शरण गये।११०।

जैसे १०५ डिग्री बुखार और १०० डिग्री बुखार दोनों बुखार ही है। एक भी बुखार निरोगताका लक्षण नहीं है। वैसे शुभभाव हों या अशुभभाव हो कोई भी निरोगी निर्मल आत्माका लक्षण नहीं है। अनादिसे जो जीव जड़की क्रियामें तथा पुण्यमें धर्म मानता है ऐसे जीवको पीलियाका रोग हुआ है। इसलिये ऐसी विपरीत मान्यताको छोड़कर अपने ज्ञानस्वभावसे ही धर्म होगा–ऐसा नक्की करना वह सम्यग्ज्ञान और सम्यक् श्रद्धा है और वही प्रथम धर्म है। यह चौथे गुणस्थानकी बात है।

ऐसी यथार्थ श्रद्धा और ज्ञान करनेवाले मुनि अब स्थिरता करने आगे बढ़ते है और समस्त पर्यायों सहित समग्र स्व और परद्रव्योंके प्रति राग और द्वेषको छोड़ते है। यहाँ परद्रव्योंमें देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, देश, शरीर, कर्म आदि पदार्थ आ जाते हैं। वे परपदार्थ हो तो धर्म हो ऐसा वस्तुस्वरूप नहीं है। प्रत्येक पदार्थ जीव और परमाणुएँ स्वतंत्र हैं। उससे जीवको लाभ-नुकसान नहीं है और परकी अवस्था जीव कर सकता नहीं–इस प्रकार परद्रव्योंको उसकी अवस्थासे जीवको पृथक् जानना। और परके लक्षसे स्वयंमें शुभाशुभ होते है वह विकार है और आत्माका स्वरूप नहीं है—इस प्रकार विकार और परपदार्थसे पृथक् जानना वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। यह चौथे गुणस्थानकी बात है। मेरा आत्मा ज्ञानस्वभावी है और मेरे तीन कालके पर्याय ज्ञानमय ही है। मेरे पर्यायसे ही है अन्यसे नहीं। पर आत्मा ज्ञानस्वभावी है और उसकी तीन कालके पर्याय ज्ञानमय ही है। उसकी पर्याय उसके आत्मामेंसे होती है, मुझसे होती नहीं है। जड़ पदार्थ स्पर्श-रस-गंध-रंगमय है और उसके तीनकालकी पर्याय रूपी हैं। उनकी पर्याय वे जड़ पदार्थमेंसे ही होती है, मुझसे होती नहीं है।

स्वयंमें होनेवाले शुभाशुभभाव वह मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा को श्रद्धा और ज्ञानमें नक्की किया है। यहाँ तो उससे आगे बढ़कर आचार्य भगवानने अंतर रमणताकी और चारित्रकी बात की है। सम्यग्ज्ञान होनेके बाद देव-गुरु-शास्त्रके प्रति, शास्त्र लिखना आदि शुभरागको अर्थात् कि सभी पर पदार्थोंके प्रतिके राग-द्वेषको मुनि छोड़ते है। अस्थिरतामें जो अल्प राग-द्वेष आते थे वे स्वभावमें एकाग्रता करनेसे उत्पन्न होते नहीं है।

इस गाथामें स्व तथा पर ऐसे समस्त द्रव्योंके प्रति होनेवाले राग और द्वेषको छोड़ता है–ऐसा कहा है। उसमें परपदार्थके प्रतिकी बातका वर्णन हो गया है और स्वके प्रति राग-द्वेष छोड़नेकी बात कही वह सूक्ष्म है। आत्मा ज्ञानस्वभावी शुद्ध है और ऐसे शुद्धस्वभावमें

ठहर जाऊँ–ऐसा विकल्प वह राग है, अथवा शुद्धोपयोगको ग्रहण करूँ–ऐसा शुद्धोपयोगकी ओरका राग उसे यहाँ स्वके प्रति राग कहा है। अशुद्धोपयोगका अभाव करूँ या अशुद्धोपयोगका निषेध करूँ–ऐसा विकल्प अथवा शुद्धोपयोगके रागका अभाव करूँ ऐसा विकल्प–ऐसा दोनों विकल्प द्वेष है, उसे स्वके प्रतिका द्वेष कहा है। स्वरूपकी ओर ढलना और विकल्पको छोड़ दूँ ऐसे अस्थिरताके रागद्वेषको मुनि छोड़ते है।

यहाँ स्व तथा परके राग-द्वेषको छोड़ते है–ऐसा कहा है। वास्तवमें जो राग-द्वेष हुआ उसे छोड़ना तो क्या उसे तो छोड़ सकता ही नहीं है। रागके लक्षसे राग छूटता नहीं है लेकिन ज्ञानस्वभावमें ठहरने पर, पर या स्व की ओरका किसी भी प्रकारका राग-द्वेष उत्पन्न ही होता नहीं है। वह स्व-परके राग-द्वेषको छोड़ता है ऐसा कहा जाता है। यहाँ स्व-परको जाना वह तो ज्ञानकी पर्याय है, वह तो स्वयंका स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है। इसलिये जानना नुकसान करता नहीं है लेकिन इच्छा करना वह राग है, चारित्रगुणकी विकारी पर्याय है और वह अपने स्वभावमें ठहरने देती नहीं है–ऐसा समझना।

यहाँ तो सम्यग्ज्ञान होनेके पश्चात् मुनिके शुद्धोपयोगकी बात करते है। मुनि अपने शुद्धोपयोगमें लीन है। ''आत्मामें ठहर जाऊँ'–ऐसे विकल्पको यहाँ परद्रव्य कहा है। अपने ज्ञानस्वभावमें ठहरने पर ऐसे परद्रव्यका भी आलम्बन सहजमें छूट गया है ऐसे मुनि ''शारीरिक दुःख''का नाश करते है, अर्थात् उनको निगोददशा तो कदापि नहीं है और अवतार भी रहते नहीं है और संपूर्ण आनंदको प्राप्त करते है। मुनि अन्य कोई क्रिया या शुभभावमें लीन नहीं है लेकिन स्वयंके ज्ञानस्वभाव एकमें ही लीन है। इसलिये एकांत उपयोग विशुद्ध कहा है, और वह सम्यक् एकांत है।

अग्निको लोहेके संगके कारण हथोड़ेकी मारको सहन करना पड़ता है लेकिन लोहेसे अलग होने पर मारको सहन करना नहीं पड़ता है, वैसे ज्ञानमूर्ति स्वभावमें पुण्य-पापरूपी लोहेको पकड़े तो दुःख सहन करना पड़ता है लेकिन शुद्धोपयोगी मुनि शरीर, कर्म, पुण्य, पाप आदि परद्रव्योंका अलम्बन लेते नहीं इसलिये उनको लेशमात्र भी दुःख होता नहीं है और परिपूर्ण सुखदशाकी प्राप्ति होती है। इसलिये आचार्य भगवान कहते है कि ''यह शुद्धोपयोग ही मुझे शरण है''। ताड़पत्र पर शास्त्र लिखते समय भी शुद्धोपयोग ही शरणभूत है–ऐसा कहते है। ताडपत्रकी अवस्था, लिखनेकी क्रिया, हाथकी क्रिया, शुभराग आदि सभी क्रियाके आचार्य भगवान ज्ञातादृष्टा है। यहाँ पंचपरमेष्ठीको शरण कहा नहीं है, साक्षात् भगवानको शरणरूप कहा नहीं है। ताडपत्र पर शास्त्र लिखनेका शुभभाव को भी शरणरूप कहा नहीं है। मात्र शुद्धोपयोग एक ही शरणरूप है ऐसा कहा है। (क्रमशः) ✻

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-४३ (गाथा-३८)

निज निधानको खोलनेकी चाबी

श्री इष्टोपदेश शास्त्रजीकी यह ३८वीं गाथा प्रारम्भ होती है।

यथा यथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपे।
तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्॥३८॥
जेम जेम विषयो सुलभ, पण नहि रुचिमां आय,
तेम ते आतम-तत्त्वमां अनुभव वधतो जाय. ३८.

गाथाका अर्थ है कि धर्मी जीवको जैसे जैसे सहज प्राप्त हुए इन्द्रिय विषय भोग रुचिकर नहीं लगते है वैसे वैसे स्वात्म-संवेदनमें निजात्मानुभवनकी परिणति वृद्धिको प्राप्त होती जाती है।

धर्मी जीवको स्वयंके आत्मामें ही स्वयंका धर्म भासित होता है। धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, आनंद आदि सभी धर्मकी पर्यायें हैं। यह धर्मपर्याय कोई संयोगके अवलम्बनसे या रागके एक समयकी पर्यायके अवलम्बनसे प्रकट होता नहीं लेकिन त्रिकाल शुद्ध निज परमात्मतत्त्वके अवलम्बनसे ही वह प्रकट होता है क्योंकि वस्तु स्वयं अनंत आनंद आदि अनंत धर्मोंसे परिपूर्ण है।

आत्मामें ही आनंद है ऐसी श्रद्धा हो, ज्ञान हो और आत्मामें ही आनंद है ऐसी स्थिरता होती है उसका नाम धर्म है, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता होनेके पश्चात् धर्मीको पूर्व पुण्यके कारण सहज प्राप्त होनेवाले इन्द्रिय विषयोंमें आनंद भासता नहीं है। पाँच-पचास करोड़की लक्ष्मी या विशेष अधिकारमें धर्मीको आनंद भासित नहीं होता है क्योंकि उसने अनंत आनंदसे परिपूर्ण निज लक्ष्मी और अधिकारका अवलोकन कर लिया है।

अज्ञानीने अनादिकालसे अनंतबार परका अवलोकन किया लेकिन एक समय भी स्वयंका अवलोकन किया नहीं लेकिन जिसने एक समय भी स्वयंका अवलोकन किया है ऐसे धर्मीको बाह्यमें कहीं भी रुचि होती नहीं है। जैसे खेलमें मग्न बालकको पिता पढ़नेको

साधुगणकी सभामें सुशोभित भये,
चंद्र जिम उडुगणोंसे सुवेष्टित भये।१११।

भेजे तो वह पढ़ने जाता है लेकिन मन तो खेलमें ही है कि कब पढ़ना समाप्त हो और मैं खेलने चला जाऊँ, वैसे धर्मीको स्वभावकी रुचि जागृत हुई है इसलिये बाह्य विकल्पमें रस आता नहीं है और ऐसा होता है कि कब मैं अपने स्वभावमें रमणता करूँ ! धर्मी अन्यायसे प्राप्त हुई लक्ष्मीको उपयोगमें लेते नहीं है लेकिन पूर्व पुण्योदयसे सहज प्राप्त इन्द्रपद, इन्द्राणीका संयोग, चक्रवर्तीपद और ९६००० रानिओंका योग सहज मिले तदपि धर्मीको उसमें सुखबुद्धि होती नहीं है। समयसार नाटकमें आता है कि धर्मी पूर्व पुण्यसे प्राप्त बाह्य विषयभोगोंको विष्टा समान जानता है इसलिये जैसे विष्टा त्यागने योग्य है वैसे धर्मी विषयभोगोंकी ओरका लक्ष छोड़ने जैसा है ऐसा जानते हैं।

श्रीमद् राजचंद्रजी भी १६ वर्षकी उम्रमें ऐसा लिखते है कि–

''लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो?
शुं कुटुम्ब के परिवारथी वधवापणुं ए नय ग्रहो.
वधवापणुं संसारनुं, नरदेहने हारी जवो,
एनो विचार नहि अहोहो, एक पळ तमने हवो.''

लक्ष्मी बढ़े, अधिकार बढ़े, कुटुम्ब बढ़े उसमें तुझमें क्या वृद्धि हुई ? भाई ! तेरी गुणसंपदा और गुणसमाज तो तेरे पास ही है। उससे ही तेरा वास्तविक बड़प्पन है।

अशुभकी रुचि तो ठीक लेकिन जिसे शुभभावकी रुचि है और शुभके फलमें प्राप्त भोगोंकी भी रुचि है। इसलिये एक जगह कहा है कि जिसे पुण्यकी रुचि है उसे जड़की रुचि है। व्रतादिके परिणाम पुण्य है, विकार है, अचेतन है, वह तो चैतन्यभावसे विरुद्धभाव है। उसकी जिसे रुचि है उसे भोगोंकी ही रुचि है, उसे वास्तविक चार गतिके भवभ्रमणकी रुचि है, आत्माकी रुचि नहीं है।

धर्मीको तो परद्रव्यका और विकल्पका संग होता है उसमें दुःख लगता है। कोई प्रशंसा करे तो अपशब्द समान लगते है। पुण्य-पापके भाव विष समान लगते है। मंत्र-तंत्रादि दुःखरूप लगते है। स्वयंकी निधि स्वयंमें देखी है उससे बाह्यमें कुछ भी सुखरूप लगता ही नहीं है। स्वयंके निधानमें एकाग्रता करना वह ही निधान खोलनेकी चाबी है। इसलिये धर्मी उसका ही प्रयत्न करते है। पुण्य-पापकी क्रिया वह निधान खोलनेकी चाबी नहीं है। इसलिये धर्मीको उसमें रस नहीं है।

मोरके कंठ सम नीलरंग रंग है,
काममद जीतकर शांतिमय अंग है;

लौकिक उन्नतिसे धर्मी स्वयंकी उन्नति मानते नहीं है। शरीरकी कांतिको धर्मी राखके समान जानते है। जड़की सुंदरतासे स्वयंकी सुंदरता मानते है वह तो मूढ़ है, उसे स्वयंकी सुंदरताका भान नहीं है। दृष्टि करते ही जहाँ निधान हाथमें आये ऐसा है ऐसी स्वयंकी वस्तुको तो अज्ञानी देखता नहीं है, सुनता नहीं है और जिसमें कुछ भी नहीं ऐसे जड़ विषयोंकी ओर सावधानीपूर्वक दृष्टि रखकर बैठा है।

मेरे चैतन्यघरमें अनंत सिद्ध परमात्मा विराजते है, ऐसा जानने पर धर्मीको बाह्य घर को तीरकी नोक समान पीड़ादायी लगता है। कुटुम्बका कार्य काल समान लगता है। धर्मीको लोकलाज लार समान, मान-कीर्ति नाकके मैल समान और भाग्योदय विष्टा समान लगता है। भाग्योदयसे बड़े बड़े मकान आदि सभी अनुकूल सामग्रीयाँ मिले उससे आत्माको क्या लाभ ? वह कोई वस्तु आत्मामें आती नहीं है। आत्मामें तो उसकी ममता ही आती है, जो आत्माको दुःख देनेवाली है इसलिये चक्रवर्तीपद भी धर्मीको रुचिकर नहीं है।

भगवान आत्माके सत्त्वमें-तत्त्वमें आनंद निधान भरा है उसकी दृष्टि-रुचि होने पर उसे बाह्यमें कहीं पर चैन पड़ता नहीं है, रस लगता नहीं है, खुशी लगती नहीं है, संतोष लगता नहीं है। ऐसे धर्मीको बनारसीदास कहते है कि मैं नमस्कार करता हूँ। ज्ञानीने बाह्यमें सब कुछ देख लिया लेकिन कहीं पर भी सुख नहीं मिला। शास्त्रों भी पढ़े लेकिन शास्त्रोंके अवलम्बनसे भी आनंद नहीं मिला। स्वात्मसंवेदनमें ही सुख-आनंद सब कुछ मिला लेकिन अब उसे बाह्यके सभी भोग दुःखदायक भासते हैं। और जैसे जैसे वह सहज प्राप्त बाह्य विषयोंमें अरुचि बढ़ती जाती है वैसे वैसे आत्मानुभवमें प्रतिक्षण वृद्धि होती जाती है।

श्रोता :—आप कहते हो कि गुरुसे या शास्त्रसे ज्ञान होता नहीं है लेकिन गुरुकी वाणी सुने बिना ज्ञान कहाँसे होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—यह बात आगे आ गई है कि स्वयंका आत्मा ही स्वयंके कल्याणका मार्ग बतलानेवाला गुरु है। जिसे अंतरमेंसे पात्रता जागृत हुई है—आत्माको पहिचाननेकी जिज्ञासा जागृत हुई है उसे गुरु अवश्य मिलते ही है। अरे ! गुरु तो क्या साक्षात् भगवानका योग भी मिल जाता है। ऐसी गहरी भावना हो कि मरकर महाविदेहक्षेत्रमें भगवानके योगमें जन्म ले। स्वयंकी पात्रता हो और निमित्त न मिले ऐसा बनता नहीं है। लेकिन निमित्त मिले तदपि पात्रता न हो तो निमित्त क्या करे ? अनंत भवमें अनंतबार जीव साक्षात् भगवानके समवसरणमें जाकर आया—वाणी सुनकर आ गया लेकिन स्वरूप अवलोकनकी रुचि बिना सुना हुआ सब कुछ शून्य हो गया। (क्रमशः) *

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

निर्विकल्प-अनुभवके समयका विशिष्ट आनंद

''प्रश्न :–यदि सविकल्प-निर्विकल्पदशामें जाननेकी विशेषता नहीं है तो अधिक आनंद कैसे होता है ?

उत्तर :–सविकल्पदशामें ज्ञान अनेक ज्ञेयोंको जाननेरूप प्रवर्तता था, वह निर्विकल्पदशामें केवल एक आत्माके ही जाननेमें प्रवर्तता है,—एक तो यह विशेषता है; दूसरी विशेषता यह है कि जो परिणाम विविध विकल्पमें परिणमता था वह केवल स्वरूपमें ही तादात्म्यरूप होकर प्रवर्ते।—यह दूसरी विशेषता हुई। ऐसी विशेषता होनेपर कोई वचनातीत ऐसा अपूर्व आनंद होता है कि जिससे अंशकी भी जाति विषयोंके सेवनमें नहीं है। इसलिये इस आनन्दको अतीन्द्रिय कहते हैं।''

धर्मी जीव सविकल्पदशाके समयमें आत्माका जैसा स्वरूप जानता था वैसा ही निर्विकल्पदशाके समयमें जानता है, निर्विकल्पदशामें कोई विशेष प्रकार जाना ऐसी विशेषता नहीं है, फिर भी सविकल्पसे निर्विकल्पदशाकी बहुत महिमा की गयी है–तो इसका कारण क्या ? इसमें ऐसी कौनसी विशेषता है कि स्वानुभवकी इतनी भारी महिमा शास्त्रोंने गायी है ? यह बात यहाँ दिखानेकी है।

भाई ! स्वानुभवके वक्त ज्ञानोपयोग अपने शुद्धात्माको ही स्वज्ञेय बनाके उसमें स्थिर हो गया है; पहले वह उपयोग बाह्य अनेक ज्ञेयोंमें व विकल्पमें भ्रमण करता था वह मिटके अब वह उपयोग अपने स्वरूपके एकके ही जाननेमें एकाग्र हुआ;–एक तो यह विशेषता हुई। और दूसरी विशेषता यह हुई कि पहले सविकल्पदशामें अनेक प्रकारके राग-द्वेष-शुभाशुभ परिणाम होते थे, अब स्वानुभवके समयमें शुद्धोपयोग होनेपर बुद्धिपूर्वकके समस्त रागादि परिणाम छूट गये, केवल निजस्वरूपमें ही परिणाम तन्मय हुये। ऐसी विशेषता होनेसे स्वानुभवकालमें सिद्ध भगवान जैसा जो अतीन्द्रिय स्वाभाविक आनन्द अनुभवमें आता है वह वचनातीत है, जगत्के किसी भी पदार्थमें इस सुखका अंश भी नहीं है, इन्द्रियजनित सुखोंसे इस सुखकी जाति ही अलग है; यह सुख तो आत्मजनित है, आत्माके स्वभावमेंसे

नाथ! तेरी तपस्या जनित अंग जो,
शोभता चंद्रमंडल मई रंग जो।११२।

उत्पन्न हुआ है। यद्यपि, जितनी वीतरागता हुई है इतना आत्मिक सुख तो सविकल्पदशाके समयमें भी धर्मीको वर्त ही रहा है तथापि, निर्विकल्पदशाके समयमें उपयोग निजस्वरूपमें तन्मय होकर जिस अतीन्द्रिय परम आनन्दका वेदन करता है उसकी कोई खास विशेषता है। अहा ! स्वानुभवका आनन्द क्या चीज है इसकी अज्ञानीको कल्पना भी नहीं आ सकती। जिसने अतीन्द्रिय चैतन्यको कभी देखा नहीं, जिसने इन्द्रियविषयोंमें ही आनन्द मान रक्खा है उसको स्वानुभवके अतीन्द्रिय आनंदका आभास भी कहाँसे हो सकता है? अरे, ऐसे स्वानुभवके आनन्दकी चर्चा भी जीवको दुर्लभ है। जिसने अपने ज्ञानको बाह्य-इन्द्रिय विषयोंमें ही भ्रमाया है, कभी ज्ञानको अंतर्मुख करके अतीन्द्रिय वस्तुको लक्षगत नहीं किया है, उसे उस अतीन्द्रियवस्तुके अतीन्द्रियसुखका अनुमान भी नहीं हो सकता। 'नीमको खानेवाली गिलहरी आमका स्वाद कैसे जानेगी?'—वैसे इन्द्रियज्ञानमें ही लुब्ध प्राणी अतीन्द्रियसुखके स्वादको कैसे जानेगा? ज्ञानीके चैतन्यका अतीन्द्रियसुख जान लिया है, इसका अपूर्व स्वाद चख लया है, और वह सुख उसे निरंतर रहता है; इसके उपरांत यहाँ तो निर्विकल्पदशामें उसे आनंदकी जो विशेषता है इसकी बात है।

शंका :—हम तो गृहस्थ; गृहस्थको ऐसी स्वानुभवकी बात कैसे समझमें आये?

समाधान :—भाई ! स्वानुभवकी यह चिट्ठी लिखनेवाले खुद भी गृहस्थ ही थे; और जिनके ऊपर यह चिट्ठी लिखी गई है वे भी गृहस्थ ही थे; अतः गृहस्थोंको समझमें आये ऐसी यह बात है। आत्माका सत्य ज्ञान तो गृहस्थको भी हो सकता है। मुनिदशा जैसी स्वरूपस्थिरता गृहस्थको नहीं होती परन्तु आत्माका ज्ञान तो मुनिदशा जैसा ही गृहस्थदशामें भी हो सकता है, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। और जो ऐसा ही आत्मज्ञान करे उसी गृहस्थको धन्य कहा है; श्री कुन्दकुन्दस्वामी तो कहते हैं कि हे श्रावक ! तू निर्मल सम्यक्त्वको ग्रहण करके निरंतर उसे ही ध्यानमें ध्या। ऐसा सम्यक्त्व गृहस्थको हो सकता है तभी तो ऐसा करनेका उपदेश दिया। अतः जो सच्ची जिज्ञासा प्रकट करके समझना चाहे उसे स्वानुभवकी बात अवश्य समझमें आ जाती है। यह बात सूक्ष्म तो लगेगी परन्तु इसको समझनेसे ही आत्माका कल्याण है। इसलिये आत्माके सम्यक्त्वकी व स्वानुभवकी बात अच्छी तरह समझना चाहिये।

प्रश्न :—इसकी समझके बाद क्या करना? २४ घंटोंका कार्यक्रम क्या?

आपके अंगमें शुक्ल ही रक्त था,
चंद्रसम निर्मल रजरहित गंध था;

उत्तर :–भाई ! धर्मात्माका तो चौबीसों घंटेका यही कार्यक्रम है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्गका सेवन करना, और परभावोंका सेवन छोड़ना। चौबीस घण्टोंमें हरेक क्षण धर्मात्मा यह स्वभाव सेवनका कार्य कर रहा है। और अज्ञानी चौबीस घण्टोंमें हरेक क्षण परभावके सेवनका कार्य कर रहा है। बाहरके काम तो ज्ञानी या अज्ञानी कोई एक क्षण भी नहीं करते।

सम्यग्दर्शन होनेके बाद धर्मीका उपयोग कभी स्वमें रहता है, कभी परमें रहता है; सततरूपसे स्वमें उपयोग नहीं रहता, परन्तु सम्यक्त्व तो सततरूपसे रहता है। वह सम्यक्त्व स्वउपयोगके समय प्रत्यक्ष व पर उपयोगके समय परोक्ष–ऐसा इसमें भेद नहीं है; अथवा स्वानुभवके वक्त वह उपयोगरूप व परलक्षके वक्त वह लब्धरूप–ऐसा भेद भी सम्यक्त्वमें नहीं है। सम्यक्त्वमें तो औपशमिकादि प्रकार हैं, और वह तीनों ही प्रकार सविकल्पदशाके समयमें भी होते हैं। सम्यग्दर्शन होनेसे जितनी शुद्ध परिणति हुई वह तो शुभ-अशुभके कालमें भी धर्मीको चल रही है। सम्यग्दर्शन हुआ तबसे वह जीव सदैव निर्विकल्प-अनुभूतिमें ही रहा करे–ऐसा नहीं है। उसको शुद्धात्मप्रतीत सदैव रहती है परन्तु अनुभूति को कभी-किसी समय होती है। मुनिको भी निर्विकल्प अनुभूति सतत नहीं रहती; यदि सतत दो घड़ी निर्विकल्प रहे तो केवलज्ञान हो जाय।

स्वानुभूति वह ज्ञानकी स्वउपयोगरूप पर्याय है; सम्यग्दर्शनकी इस उपयोगरूप स्वानुभूतिके साथ विषमव्याप्ति है अर्थात् एक ओरकी व्याप्ति है। जैसे केवलदर्शन व केवलज्ञानको, अथवा आत्माको व ज्ञानको तो समव्याप्ति है,—अर्थात् जहाँ दोमेंसे एक हो वहाँ दूसरा भी अवश्य हो, और जहाँ एक न हो वहाँ दूसरा भी नहीं हो,–ऐसे दोनोंका एक दूसरेसे अविनाभाव है, उसे समव्याप्ति कहते हैं। परन्तु यहाँ सम्यक्त्वको और निर्विकल्प-स्वानुभूतिको ऐसी समव्याप्ति नहीं है, किन्तु विषमव्याप्ति (एक ओरका अविनाभाव) है; अतः—

* जहाँ निर्विकल्प अनुभूति है वहाँ सम्यग्दर्शन भी है ही, और जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं है वहाँ अनुभूति भी नहीं होती;–ऐसा नियम है; परन्तु—
* ऐसा कोई नियम नहीं कि–जहाँ सम्यग्दर्शन हो वहाँ निर्विकल्प अनुभूति सदैव हो ही, अथवा जहाँ अनुभूति न हो वहाँ सम्यग्दर्शन हो ही नहीं।
* जहाँ सम्यग्दर्शन हो वहाँ निर्विकल्प स्वानुभूति विद्यमान हो अथवा न भी हो। और जहाँ निर्विकल्प स्वानुभूति न हो वहाँ सम्यक्त्व न हो अथवा हो भी।

(शेष देखे पृष्ठ ३३ पर)

आपका शांतिमय अद्भुतं तन जिनं,
मनवचनका प्रवर्तन परम शुभ गणं।११३।

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन) (प्रवचन : ७)

प्रश्न—तब क्या हम सब कुछ दे डालें? हमारे पीछे स्त्री बच्चे आदि भी तो हैं?

उत्तर—स्त्री-बच्चे हैं सो वे क्या हैं? यह देव-गुरु सच्चे हैं या स्त्री पुत्रादि? स्त्री-बच्चे तो संसारके निमित्त हैं और वीतराग देव-गुरु तो मुक्तिके निमित्त हैं। जब तक परम वीतराग देव-गुरु और धर्मके लिए एक बार सर्वस्व समर्पण कर देनेकी भावना नहीं होती तब तक उसके सच्ची भक्ति नहीं कही जा सकती। वर्तमानमें तेरे साथी अपने माने हुए कुगुरु-कुदेवादिकी भक्ति करते हैं, और तू कुदेवादिको नहीं मानता, किन्तु बँगला, मोटर और बागबगीचा इत्यादिके लिये धन खर्च करता है, लेकिन वीतरागदेव, गुरु और धर्मके लिए खर्च करनेका तुझे उत्साह नहीं होता, इससे स्पष्ट है कि तुझे तेरे देव-गुरुकी महत्ता प्रतिभासित नहीं हुई। वीतरागी देव-गुरु बड़े हैं या तेरे बँगला, बाग, बगीचे इत्यादि। जगत्के सबसे बड़े तारनहार देवाधिदेव अरहन्त परमात्मा और एकाध भवमें ही मोक्ष जानेवाले परमगुरु व धर्मात्मा जीवोंमें तुझे कोई महत्ता प्रतिभासित हुई है या नहीं?

वीतरागी देव, गुरुको बड़ा कहा है, इसका अर्थ यह नहीं है कि वे किसीको कोई फल दे देते हैं किन्तु देव-गुरुके आलन्बनसे तू अपने शुभभाव कर और अपने भावसे फलको प्राप्त कर। भगवान या गुरुके प्रति ऐसा उल्लासभाव धर्मीको सहज ही होता है।

कोई यों कहे कि हमें सत्यको समझनेका समय ही नहीं मिलता? उसके लिए कहते हैं कि भाई! तुझे धन, कुटुम्ब इत्यादिकी व्यवस्था करनेका समय मिलता है, धन, कुटुम्ब, मकान, स्त्री, बच्चे, शरीर और इन्द्रियोंके विषय इत्यादिकी सम्हाल करनेके लिए समय मिलता है और उनके लिए तन, मन, धन खर्च करता है और यहाँ वीतराग देव-गुरुकी सेवाके लिए व आत्महितके उद्यमके लिए तुझे समय नहीं मिलता? यह आश्चर्य है। जिस प्रकार अन्य कार्योंमें प्रवृत्ति करता है उसीप्रकार यदि देव-गुरु-धर्मके लिए प्रवृत्ति नहीं करेगा तो तुझे देव-गुरु-धर्मके प्रति रुचि ही नहीं है; जिस प्रकार तू विवाहादि कार्योंमें अपने पदके अनुसार प्रवृत्ति करता है, अपनी प्रतिष्ठाके अनुसार खर्च करता है। उसी प्रकार जहाँ-जहाँ

जनन व्यय ध्रौव्य लक्षणं जगत् प्रतिक्षणं,
चित अचित आदिसे पूर्ण यह हरक्षणं;

देव, शास्त्र और गुरुकी प्रभावना इत्यादिकी अनेक प्रकारसे आवश्यकता हो वहाँ पर भी तू इसीप्रकार उल्लासके साथ प्रवृत्ति करता है या नहीं ? इसमें कही कंजूसी तो नहीं करता ? यह तू अपने परिणामका विचार कर देख। जब तक तुझमें विशेष धर्मवासना नहीं होती अर्थात् आत्मस्वरूपके भानमें सर्व संग त्यागी होकर स्वरूपकी विशेष रमणतारूप चारित्रदशा नहीं होती तब तक विवेकपूर्वक देव, शास्त्र, गुरुके लिये तन, मन, धन लगाया कर। भाई ! जिस प्रकार तू विवाहादि कार्यमें तेरे पदानुसार धन इत्यादि खर्च करता है उसी प्रकार जब तक गृहस्थाश्रममें है तब तक देव-गुरु-धर्मके लिए तेरी शक्तिके अनुसार तन, मन, धन, क्षेत्र, काल, ज्ञान और श्रद्धा इत्यादिका विभाग कर। यह सब तेरा भाव सुधारनेके लिये कहा जा रहा है।

प्रश्न—भगवान धन, क्षेत्र इत्यादिको क्या करेंगे ?

उत्तर—अरे मूर्ख ! तुझे भगवानको कहाँ देना है ? भगवानके लिए कुछ नहीं करना है, किन्तु यह वीतरागताकी रुचि बढ़ाकर तेरी तृष्णा कम करनेके लिए है; तू देव-शास्त्र-गुरुकी प्रभावनाके लिए खर्च कर उसमें तेरी कषायकी मंदताका तुझे लाभ है। यदि तुझे सत्के प्रति रुचि हुई है और धर्मका प्रेम है तो यह देख कि अन्य साधर्मीयोंमेंसे किसे किस बातकी प्रतिकूलता है और यह देख जानकर यदि किसीको शास्त्र इत्यादिकी आवश्यकता है तो उसकी पूर्तिके लिए अपने पदके अनुसार हिस्सा दे। यहाँ पर अपनी पूंजीके अनुसार अपने पदके योग्य खर्च करनेको कहा गया है। यदि दस लाखकी पूंजी हो और उसमेंसे सौ दोसौ रूपये खर्च करता है तो वह पदके योग्य नहीं कहा जा सकता। तू जितना देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति प्रभावनामें खर्च करेगा, उतना तेरे पास रहेगा और स्त्री बच्चे आदिके लिए जो संग्रह कर रखा है उसमेंसे एक पाई भी तेरे साथ नहीं रहेगी। हाँ तेरे साथमें रहेगा तेरी ममताका पाप। यदि लोकव्यवहारमें भी विवेक करना आता है तो यहाँ भी विवेक करना चाहिए।

दृष्टांत—एक बुढ़िया थी। उसकी अपने पुत्रवधूके साथ अनबन रहा करती थी और अपनी लड़की पर खूब प्रेम था। एक बार उसके लड़केने अच्छा धन कमाया इसलिए उसने अपनी बुढ़िया माँसे कहाँ कि माँ, मैंने अच्छा धन कमा लिया है इसलिए अब अपनी बहिन और स्त्रीके लिए एक एक हजार रुपयेके गहने बनवाना चाहता हूँ। बुढ़ियाने विचार किया कि लड़कीके लिए जो गहने बनवाये जायेंगे वे तो जब लड़कीकी शादी होगी तब उसके साथ ही दे देना होगा, इसलिए वे घरमें नहीं रहेंगे, यों विचार करके (यद्यपि पुत्रवधूके साथ

यह कथन आपका, चिह्न सर्वज्ञका,
है वचन आपका आप्त उत्कृष्टका।११४।

उसकी अनबन रहा करती थी, फिर भी) उसने कहा कि—भाई, बहूके लिए एक हजारके बदले देढ़ हजारके गहने भले बनवा दे, किन्तु बहिनके लिए तो सौ दोसौ रूपयेके गहने बस होंगे। यद्यपि बुढ़ियाको तीव्र ममता है, किन्तु यहाँ केवल यही देखना है कि बुढ़ियाने यह विवेक (विचार) कर देखा कि इसमेंसे घरमें कितना रहेगा और बाहर कितना जायगा।

इसीप्रकार सच्चे देव, गुरु और धर्मकी प्रभावनाके कार्योंमें जितना धन खर्च होगा उसके भावका फल तेरे घरमें रहेगा और तूने स्त्री आदिके लिये इकट्ठा कर रखा है वह कही तेरे साथ रहनेवाला नहीं है वह तो पापका कारण होगा; इस प्रकारका विवेक (विचार) करके अपने तन-मन-धनको देव-गुरु-धर्मके लिये यथाशक्ति अर्पण कर। वह बुढ़िया जितना विवेक कर सकी क्या तू इतना भी विवेक नहीं कर सकता ? तू अपने पुरुषार्थसे जितनी तृष्णा कम करेगा उतना ही तेरे घरमें रहेगा। जब तक मुनिपना प्रकट नहीं हो जाता तब तक जो उत्तम गृहस्थ है उसे लक्ष्मीका चतुर्थ भाग, मध्यमको छठ्‌ठा भाग और जघन्यको दसवाँ भाग देव-गुरु-धर्मकी प्रभावनादि शुभ कार्योंमें अवश्य खर्च करना चाहिए। जब इन्कमटेक्स देना पड़ता है तब वह क्यों देते हो ? इसीप्रकार यहाँ देव, गुरु और धर्मके लिए भी यथा शक्ति तन, मन, धन लगाना चाहिए। यदि तुझे देव-गुरु-धर्मकी भक्ति प्रभावनाका उल्लास पैदा नहीं होता तो कहना होगा कि तुझे धर्मकार्य फीके लगे हैं और इससे तेरा भविष्य ही खराब मालूम होता है।

भाई ! तुझे तो अपना अच्छा करना है न ? जिसे अपना हित करना हो उसीके लिए यह बात कही जा रही है। जिसे अपनी चिन्ता नहीं है उसके लिए कुछ नहीं कहा जा रहा है। भौंरा गुन्जन करता हुआ फूलकी कली पर बैठता है और फूलकी कली खिल उठती है किन्तु जब वह लक्कड पर बैठता है तब कहीं लक्कड़ नहीं खिल जाता। इसीप्रकार आचार्यदेव कहते हैं कि हम अध्यात्मरसका गुन्जन कर रहे हैं, जो निकट मुक्तिगामी भव्य जीव होंगे वे अन्तरसे खिल उठेंगे किन्तु जो दीर्घसंसारी जीव होंगे उन्हें यह अध्यात्मरसका उपदेश नहीं रुचेगा।

जगत्‌के प्राणियोंको लोभरूपी कुएँमेंसे निकालनेके लिए श्री पद्मनंदी-पंचविंशतिकामें दानका उपदेश देते हुए कहा है कि जब तक गृहस्थदशामें हो तब तक देव-शास्त्र-गुरुके लिए तन, मन, धन लगाते रहो। पैसा खर्च करते रहो। पैसा खर्च करनेसे कम नहीं होता,

(शेष देखे पृष्ठ २९ पर)

आपने अष्ट कर्म कलंकं महा,
निरुपमं ध्यान बलसे सभी है दहा;

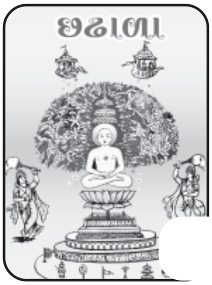

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

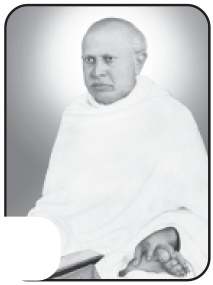

(तीसरी ढाल, गाथा-३)

व्यवहार सम्यग्दर्शनका वर्णन

❊ निर्जरा तत्त्व ❊

धर्मीका उपयोग जैसे जैसे एकाग्र होता जाता है वैसे वैसे शुद्धता वृद्धिगत होती जाती है, और उतनी अशुद्धता तथा कर्म खिर जाते है, उसका नाम निर्जरा है। जीवकी शुद्धतासे निर्जरा होती है। कोई देहकी क्रियासे निर्जरा होती नहीं है। शरीर शुष्क और दुःख लगे तो कोई निर्जराका कारण नहीं अर्थात् कि वह धर्म नहीं है। चैतन्यकी शुद्धतारूप तप है उसके द्वारा यथार्थ निर्जरा होती है और वह धर्म है। कर्मोंकी स्थिति पक कर जो सविपाक निर्जरा होती है वह तो सभी जीवोंको होता है, उसके साथ धर्मका सम्बन्ध नहीं, वह निर्जरा मोक्षका कारण नहीं है।

❊ मोक्ष तत्त्व ❊

जहाँ संपूर्ण निराकुल सुख और ज्ञान है, और जिसमें कर्मका–रागका या दुःखका सर्वथा अभाव है ऐसी मोक्षदशा है। मोक्ष क्या है, और उसका उपाय क्या है उसे पहिचानना चाहिये। रागका सर्वथा अभावरूप जो मोक्ष, उसका उपाय भी राग बिनाका ही है। मोक्षके उपायरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों राग बिनाका है। राग वह मोक्षका उपाय नहीं है। रागको जो मोक्षका साधन मानता है उसे मोक्षतत्त्वकी खबर नहीं है। मोक्षका कारण और बंधके कारण भिन्न-भिन्न है, उसको भिन्नरूप जानना चाहिये। जो बंधका कारण होता है वह मोक्षका कारण नहीं होता है। सर्वज्ञ भगवानके श्रीमुखसे जो सात तत्त्वका स्वरूप आया है उसके ज्ञानमें संपूर्ण विश्वके तत्त्वोंका ज्ञान आ जाता है। जीव क्या ? अजीव क्या ? किस भावसे जीवको सुख होता है, किस भावसे जीवको दुःख होता है, उसके ज्ञान बिना जीवको धर्म या सुखका उपाय हो सकता नहीं है। मोक्षदशारूप परिणमित आत्मा वह देव, संवर-निर्जरारूप परिणमित आत्मा वह गुरु–ऐसे यथार्थ देव-गुरुकी पहिचान भी नव तत्त्वोंके ज्ञानमें आ जाती है और नव तत्त्वके विकल्पोंसे पार होकर ज्ञान अनुभूति द्वारा शुद्ध आत्माको प्रतीतमें

भवरहित मोक्ष–सुखके धनी हो गअे,
नाश संसार हो भाव मेरे भअे ।११५।

लेना वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। अहा ! यह तो अभी वीतरागी-जैनधर्मका प्रथम अंक था— धर्मकी प्रथम भूमिका जो सम्यग्दर्शन उसकी यह बात है।

वीतरागी जैनमार्ग अतिरिक्त अन्यमतमें तो यथार्थ तत्त्वों होते नहीं है, क्योंकि उसमें तो सर्वज्ञता ही नहीं। जिनमतमें सर्वज्ञ भगवानके अतीन्द्रियज्ञानसे जानकर नव तत्त्वोंको जिस प्रकार कहा है उस प्रकार यथार्थ पहिचानकर श्रद्धा करना वह सम्यग्दर्शन व्यवहारसे है, उसमें भेद और विकल्प है इसलिये उसे व्यवहार कहा; और उसी समय साथमें स्वयंके शुद्ध आत्माकी रागरहित निर्विकल्प प्रतीत वर्तती है वह सम्यग्दर्शन निश्चयसे है। यह निश्चय सम्यग्दर्शन वह मोक्षका कारण है।

देखो भाई ! स्वयंके आत्माके यथार्थ स्वरूपका निर्णय करनेके लिये, सर्वज्ञ भगवानने कहे ऐसे तत्त्वोंका श्रवण करना चाहिये, अंतरमें उसका विचार-विवेक और पहिचान करके दृढ़ निर्णय करना चाहिये। तत्त्वमें तनिक भी विपरीतता न रहे ऐसे चारोंबाजुसे स्पष्ट निर्णय करना चाहिये। सर्वज्ञ वीतरागदेव अरिहंत परमात्माने जो धर्म कहा और जीवका जैसा स्वरूप कहा उसकी पहिचान बिना अन्य प्रकारसे धर्मको मान लेते है उसमें कोई धर्म नहीं; यह तो शुभ-अशुभमें घूमकर वहाँका वहाँ ही रहता है, कहाँ ?—कि संसारमें ही। सम्यग्दर्शन बिना रागमें और देहकी क्रियामें सामायिक आदिमें धर्म मान ले तो उसे जीव-अजीवकी भिन्नताका भी भान नहीं है। रागसे भिन्न आत्माका जिसे भान नहीं है और रागके अभावरूप सामायिक कैसी ?

प्रश्न :– गुड़ जब भी खाते है तब मीठा ही लगता है, अंधेरेमें भी वह मीठा ही लगता है; वैसे सामायिकसे तो धर्म ही होता है, चाहे सामायिक करनेवाला अज्ञानी हो !

उत्तर :—भाई, गुड़ मीठा लगता है यह बात तो सही है, लेकिन गुड़ होना चाहिये न ? गुड़के बदले गोबरके उपलाके टुकड़ाको गुड़ मानकर खा ले तो ? वैसे सामायिकसे धर्म हो यह बात सत्य है, लेकिन सामायिक तो होनी चाहिये न ? सामायिकके बदले राग-द्वेष-अज्ञान भावोंको सामायिक मान लो उससे कोई धर्म नहीं होता है, उसे तो अज्ञानकी पुष्टि होती है। सामायिकके नाम पर रागका सेवन करे और उसे धर्म होता नहीं है। राग बिनाका समभावी-ज्ञानस्वरूपी आत्मा कैसा है उसे उसकी पहिचान हो और ऐसे आत्माके ध्यानमें एकाग्रताके उद्यम द्वारा राग-द्वेषके विषम भाव उत्पन्न हीं नहीं होगा और वीतरागी

समभाव रहे, उसका नाम सामायिक धर्म है और वह मोक्षका कारण है। ऐसी सामायिक पहिचाने भी नहीं। रागसे भिन्न आत्माको जाने भी नहीं ऐसे अज्ञानीको कदापि सामायिक होती नहीं है। जैसे कोई उपला खाये और माने कि मैं गुड़ खाता हूँ तो वह मूर्खमें गिना जायेगा, वैसे अज्ञानी शुभराग करता है और धर्म मानता है कि मैं सामायिक धर्म करता हूँ– ऐसे अज्ञानके कारण जीव संसारमें चार गतिके दुःख भोग रहा है, उससे कैसे मुक्त हो– उसकी यह बात है। सम्यग्दर्शनपूर्वक वीतरागस्वरूपमें ठहरना उसे भगवानने सामायिक कहा है, और उसे मोक्षमार्ग कहा है; दो घड़ीका सामायिक मोक्ष दे ऐसी उसकी महिमा है–लेकिन सम्यग्दर्शन बिना सामायिक कैसी ? और मोक्षमार्ग कैसा ?

प्रश्न :–जीव अनंतबार नववीं ग्रैवेयकमें गया तब उसने नव तत्त्वकी श्रद्धा तो की थी, तदपि संसारमें क्यों भटक रहा है ?

उत्तर :–क्योंकि उसने अंतर्मुख होकर शुद्ध आत्माकी अनुभूतिकी श्रद्धा नहीं की और मात्र नव तत्त्वके विकल्पमें ही अटक गया, अर्थात् निश्चयके लक्ष बिना मात्र व्यवहारके पक्षसे नव तत्त्वको शास्त्रानुसार माने और उसके विकल्पको ही सम्यग्दर्शन मानकर उसमें अटक गया, इसलिये संसारमें ही भटक रहा है। यहाँ उसकी बात नहीं। यहाँ तो मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शन सहित तत्त्वोंकी श्रद्धा कैसी होती है उसकी बात है; निश्चयपूर्वकके व्यवहारकी बात है। मात्र व्यवहारश्रद्धा तो अज्ञानीने की लेकिन निश्चय सहितका व्यवहार अज्ञानीको होता नहीं है।

यद्यपि यह व्यवहार-तत्त्वश्रद्धा वह स्वयं सम्यग्दर्शन नहीं, लेकिन उसके साथ शुद्ध आत्माकी जो निश्चयश्रद्धा है वह यथार्थ सम्यग्दर्शन है और वहाँ साथमें व्यवहारको सम्यग्दर्शनका उपचार आता है यदि सच्चा हो तो अन्यमें उसका उपचार होता है, लेकिन सत्य बिना उपचार कैसा ?–उसको तो उपचार ही सत्य हो गया ! यह व्यवहार सम्यग्दर्शन कोई श्रद्धागुणकी पर्याय नहीं है, वह तो विकल्प सहित ज्ञानकी दशा है। निश्चयसम्यग्दर्शन वह श्रद्धागुणकी सम्यक्पर्याय है, वह बिना विकल्पकी है। श्रद्धामें विकल्प होता नहीं है, वह तो निर्विकल्प है।

मोक्षशास्त्रके प्रथम ही सूत्रमें मोक्षमार्गके रूपमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको कहा है। यह तीनों निश्चय है। तत्त्वार्थ-श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा वह तत्त्वश्रद्धानमें भूतार्थदृष्टिसे स्वयंके शुद्ध आत्माकी श्रद्धा साथमें ही वर्तती है, इसलिये वह निश्चयसम्यग्दर्शन है, और

इम सुगम मोक्षमग जग स्व-आधीन है,
नमिजिनं आप पूजे गुणाधीन है ।११६।

(शेष देखे पृष्ठ २९ पर)

संल्लेखना

– संल्लेखना अर्थात् समाधिमरण।

– संल्लेखना अर्थात् संन्यासमरण।

– संल्लेखना अर्थात् पंडितमरण।

– संल्लेखना अर्थात् मृत्युके समय सम्यक् प्रकारसे कषायको कृष करके ज्ञातादृष्टा रहकर शांतिसे देह परिवर्तन करना।

– संल्लेखना अर्थात् वीतरागके साथ मरण।

– संल्लेखना अर्थात् देह, सगे-सम्बन्धी, संयोगों सभी से ममत्व त्यागकर अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप आत्मामें स्थिरता सहित भवकी संधि।

– संल्लेखना अर्थात् देहसे आत्मा अलग हो उससे पूर्व देहके रागसे असंग होनेकी भावना करना।

– संल्लेखना वह आत्मघात नहीं, लेकिन आत्मजागृति है।

– संल्लेखना तो ज्ञानीके लिये है प्रीतिभोज।

– संल्लेखना तो ज्ञानीके लिये है मृत्यु महोत्सव।

– संल्लेखना तो है परसे खिसक, स्वमें बस यही भावना।

– संल्लेखना तो है 'सर्वभावसे औदासीन्य वृत्ति' करके स्वयंके आनंद स्वरूपमें आसन जमानेकी भावना।'

– जगतको तो है मृत्युका भय,
मुझे तो है आनंदकी लहर,
मुझे तो है शांतिकी लहर,
मेरे मनमें तो है मृत्यु महोत्सव।
यह भावना है संल्लेखना।

– संल्लेखना अर्थात् मन-वचन-कायाका उपयोग आत्मामें एकरूप करना।

– संल्लेखना अर्थात् आत्मामें ही अहंपना करना।

– संल्लेखना वह वीतरागस्वरूप होनेसे अहिंसा है।

– संल्लेखना मात्र मृत्यु समयमें नहीं करना है। 'आग लगे तभी कुआँ नहीं खोदते'। संपूर्ण जिंदगी प्रतिक्षण समाधिमरणकी भावना भायी हो तो मृत्यु समय वह स्मरणमें आती है।

– संल्लेखनासे मोक्ष नजदीक आ जाता है। अनंत भव अब नहीं रहते। प्रचूर कर्मका नाश होता हैं।

– सम्यग्दर्शनपूर्वककी संल्लेखनाको शास्त्रमें तेरहवाँ व्रत कहा है।

(पूज्य गुरुदेवश्रीके
श्री पुरुषार्थसिद्धि उपाय शास्त्रके
गाथा १७६, १७७, १७८के प्रवचनमेंसे)

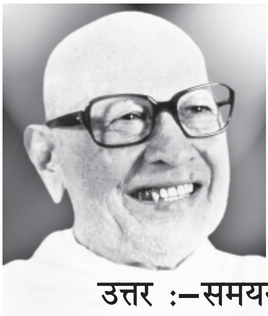

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–इसका कोई शास्त्रीय आधार भी है क्या ?

उत्तर :–समयसारकी ४९वीं गाथाकी टीकामें त्रिकाली सामान्य ध्रुव द्रव्यसे निर्मल पर्यायको भिन्न बतलाते हुए कहा है कि व्यक्तपना तथा अव्यक्तपना एकमेक–मिश्रितरूपसे प्रतिभासित होने पर भी वह व्यक्तपनेको स्पर्श नहीं करता, इसलिये अव्यक्त है। इस 'अव्यक्त' विशेषणसे त्रिकाली ध्रुव द्रव्य कहा है, उसके आश्रयसे निर्मल पर्याय प्रकट होती है, तथापि वह त्रिकाली ध्रुवद्रव्य व्यक्त ऐसी निर्मल पर्यायको स्पर्श नहीं करता। इसी अपेक्षासे त्रिकाली ध्रुव द्रव्यसे निर्मल पर्यायको भिन्न कहा है।

प्रवचनसार गाथा १७२में अलिंगग्रहणके १८वें बोलमें कहा है कि आत्मामें अनंत गुण होने पर भी उन गुणोंके भेदको आत्मा स्पर्श नहीं करता क्योंकि गुणोंके भेदको लक्षमें लेनेसे विकल्प उठता है, निर्विकल्पता नहीं होती। शुद्ध निश्चयनयसे एकरूप अभेद सामान्य ध्रुवद्रव्यको लक्षमें लेनेसे विकल्प टूटकर निर्विकल्पता होती है। इसलिये आत्मा गुणोंके भेदको स्पर्श नहीं करता—ऐसा कहा है और १९वें बोलमें आत्मा पर्यायके भेदको स्पर्श नहीं करता अर्थात् जिस प्रकार ध्रुवमें गुण हैं तथापि उनके भेदको स्पर्श नहीं करता; उसी प्रकार ध्रुवमें पर्यायें हैं और उन्हें स्पर्श नहीं करता–ऐसा नहीं कहना है, परन्तु ध्रुव सामान्यसे पर्याय भिन्न ही है–ऐसे पर्यायके भेदको आत्मा स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहकर निश्चयनयके विषयमें अकेला समान्यद्रव्य ही आता है—ऐसा बतलाया है।

प्रश्न :–सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसमें पुरुषार्थकी निर्बलताको कारण मानें ?

उत्तर :–नहीं; विपरीतताके कारण तो सम्यग्दर्शन अटकता है और पुरुषार्थकी निर्बलताके कारण चारित्र अटकता है—ऐसा न मानकर सम्यक्त्वके न होनेमें पुरुषार्थकी निर्बलताको कारण मानना, यह तो पहाड़ जैसे महादोषको राईसमान अल्प बनाने जैसा है। जो ऐसा मानता है कि सम्यग्दर्शन अटकनेमें पुरुषार्थकी निर्बलता कारण है, वह इस पहाड़ जैसी विपरीत मान्यताके दोषको दूर नहीं कर सकता।

प्रश्न :–समयसारमें शुद्धनयका अवलम्बन लेनेके लिए कहा है, परन्तु शुद्धनय तो ज्ञानका अंश है, पर्याय है, क्या उस अंशके–पर्यायके अवलम्बनसे सम्यग्दर्शन होगा ?

उत्तर :–शुद्धनयका अवलम्बन वास्तवमें कब हुआ कहा जाए ? अकेले अंशका भेद करके उसके ही अवलम्बनमें जो अटका है, उसके तो शुद्धनय है ही नहीं। ज्ञानके अंशको अंतरमें लगाकर जिसने त्रिकाली द्रव्यके साथ अभेदता की है, उसको ही शुद्धनय होता है। ऐसी अभेद दृष्टिकी, तब शुद्धनयका अवलम्बन लिया—ऐसा कहा जाता है। 'शुद्धनयका अवलम्बन'—ऐसा कहने पर उसमें भी द्रव्य-पर्यायकी अभेदताकी ही बात आती है; परिणति अन्तर्मुख होकर द्रव्यमें अभेद होने पर जो अनुभव हुआ—उसका नाम शुद्धनयका अवलम्बन है; उसमें द्रव्य-पर्यायके भेदका अवलम्बन नहीं है। यद्यपि शुद्धनय ज्ञानका ही अंश है, पर्याय है; परन्तु वह शुद्धनय अन्तरके भूतार्थ स्वभावमें अभेद हो गया है अर्थात् वहाँ नय और नयका विषय जुदा नहीं रहा। जब ज्ञानपर्यायमें झुककर शुद्धद्रव्यके साथ अभेद हुई, तब ही शुद्धनय निर्विकल्प है। ऐसा शुद्धनय कतकफलके स्थान पर है। जैसे–मैले पानीमें कतकफल अर्थात् निर्मली नामक औषधि डालने पर पानी निर्मल हो जाता है, वैसे ही कर्मसे भिन्न शुद्धात्माका अनुभव शुद्धनयसे होता है। शुद्धनयसे भूतार्थ स्वभावका अनुभव होने पर आत्मा और कर्मका भेदज्ञान हो जाता है।

प्रश्न :–कितना अभ्यास करें कि सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सके ?

उत्तर :–ग्यारह अंगोंका ज्ञान हो जाय—इतनी रागकी मंदता अभव्यको होती है। ग्यारह अंगके ज्ञानका क्षयोपशम वगैरे पढ़े ही हो जाता है, विभंग ज्ञान भी हो जाता है और सात द्वीप समुद्रको प्रत्यक्ष देखता है, तो भी यह सब ज्ञान होना सम्यग्दर्शनका कारण नहीं है।

प्रश्न :–ग्यारह अंगवालेको भी सम्यग्दर्शन नहीं होता, तब आत्माकी रुचि वगैरे इतना सारा ज्ञान कैसे हो जाता है ?

उत्तर :–ज्ञानका क्षयोपशम होना–यह तो कषायका कार्य है, आत्माकी रुचिका कार्य नहीं। जिसको आत्माकी यथार्थ रुचि होती है, उसका ज्ञान अल्प हो तो भी रुचिके बल पर सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शनके लिये ज्ञानके क्षयोपशमकी आवश्यकता नहीं, लेकिन आत्मरुचिकी आवश्यकता है।

प्रश्न :–इतने अधिक शास्त्र हैं, उनमें सम्यग्दर्शनके लिये विशेष निमित्तभूत कौन-सा शास्त्र है ?

उत्तर :–स्वयं जब स्वभावको देखनेमें उग्र पुरुषार्थ करता है, तब उस समय जो शास्त्र निमित्त हो, उसको निमित्त कहा जाता है। द्रव्यानुयोग हो, करणानुयोग हो, चरणानुयोग शास्त्र हो, वह भी निमित्त कहा जाता है, प्रथमानुयोगको भी बोधिसमाधिका निमित्त कहा है।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *शास्त्रीय ज्ञानका विकास हो उसे क्या मंथन नहीं कहते ?*

समाधान :—नहीं, वह मंथन नहीं है। मूल तत्त्वका मंथन–चैतन्यका मंथन, वह आंतरिक मंथन है; फिर उस मंथनमें ज्यादा टिक न सके तो शास्त्रके विचार आयें वह बात अलग है। प्रयोजनभूत तत्त्वके विचार आयें कि मेरे द्रव्य–गुण–पर्याय कैसे हैं ? मैं सबसे न्यारा हूँ तो कैसे न्यारा होऊँ? अंतरमें यह भेदज्ञान कैसे प्रकट हो ? आदि विचार आते हैं।

जैसे भगवान् और गुरुके आँगनमें टहेल (चक्कर) मारे उसी प्रकार ज्ञायकको ग्रहण करनेके लिये चक्कर मारा करे, उसका बारम्बार अभ्यास करता रहे। भगवान्‌के दर्शन हेतु उनके द्वारपर टहेल मारता हो, गुरुके दर्शन हेतु उनके आँगनमें टहेल मारता हो और ज्यों ही भगवान्‌के द्वार खुलें और भगवान्‌के दर्शन हों, गुरुके दर्शन हों; उसी प्रकार चैतन्यके प्रांगणमें टहेल मारा करे कि चैतन्यके दर्शन कैसे हों ? मेरे चैतन्यका स्वभाव क्या ? उसकी महिमा क्या ? इसप्रकार यदि निरन्तर टहेल मारे और अभ्यास करे तो चैतन्यके द्वार खुल जाएँ और दर्शन हों।

यदि भगवान्‌के द्वारसे हट, थक जाय तो दर्शन न हों। वैसे ही यहाँ अंतरसे थकना नहीं, निराश न होना। गुरुकी महिमा लगे तो गुरुके आँगनमें टहेल मारते रहनेपर उनके दर्शन हों; वैसे ही चैतन्यके प्रांगणमें बारम्बार टहेल मारा करे, चैतन्यका विचार–अभ्यास किया करे और उसीका रटन करते रहना चाहिये।

चैतन्यका ग्रहण नहीं होता इसलिये उसका रटन छोड़ना नहीं चाहिये। अंतरमें जो संस्कार डाले हुए हैं वे भीतरमें कार्य किये बिना रहेंगे ही नहीं।

प्रश्न :— *हमारे गाँवमें दिगम्बर जिनमन्दिर नहीं है, श्वेताम्बर मंदिर है; तो क्या वहाँ जानेसे हमें नुकसान होगा ?*

समाधान :—यथार्थ तत्त्वकी समझ होनेपर बाह्यमें क्या करना वह अपने आप

आपने सर्ववित् ! आतमध्यानं किया,
कर्मबंध जला मोक्षमग कह दिया;

समझमें आ जायगा। मैं ज्ञायक हूँ, चैतन्यस्वभावी हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है और शरीर भिन्न है, ऐसी भेदज्ञानकी बात समझनेपर फिर सच्चे देव–शास्त्र–गुरु कैसे होते हैं और अन्यत्र जानेसे क्या हानि होती है वह अपने आप समझमें आ जायगा।

मूल प्रयोजनभूत ज्ञायकको समझो, उसीमें सच्चे देव–शास्त्र–गुरु आ जाते हैं। देव कैसे होते हैं ? कि वे वीतरागी होते हैं, समवसरणमें विराजते हैं, उन्हें विकल्प नहीं है, स्वरूपमें पूर्णतया लीन हो गये हैं, उनकी नासाग्रदृष्टि है। भगवान् वीतरागी हैं तो प्रतिमा भी वैसी होनी चाहिये। प्रतिमामें फेरफार करना ठीक नहीं है; इसलिये क्या करना सो अपने आप समझ लेना। भावमें सच्चापन हो तो बाह्यमें नमस्कार भी सच्चेको होता है; यह सब यथार्थ तत्त्व समझनेसे समझमें आ जायगा।

जो ज्ञायकको समझते हैं उनका व्यवहार भी सच्चा होता है। वे ही देव–शास्त्र–गुरुको समझते हैं। जैसे भगवान् हैं वैसी ही प्रतिमाजीकी स्थापना होती है और उन्हीं प्रतिमाजीको नमन होता है। तत्त्व समझनेपर अपने आप समझमें आ जायगा कि क्या करना चाहिये। जब अपने भावमें निश्चय–व्यवहार समझमें आयेगा, तब अपने आप मिथ्या मान्यता छूट जायगी। नहीं छूटे तब तक विचार करते रहना कि सत्य क्या है ? वह जब समझमें आ जायेगा तो उनको (जो सच्चे नहीं हैं उन्हें) माननेसे क्या नुकसान है, वह अपने आप समझमें आयगा और वह छूट जायगा।

प्रश्न :— *हम स्वानुभूति प्रकट करनेके लिये क्या करें ?*

समाधान :—निर्विकल्पदशा प्रकट हो तब स्वानुभूति होती है। उससे पूर्व मैं ज्ञायक हूँ.....ज्ञायक हूँ—ऐसे बारम्बार ज्ञानमें रटन करते रहना। यह विकल्प आते हैं वे मेरा स्वरूप नहीं हैं; मैं विकल्पोंसे भी पृथक् हूँ; जो मन्द या तीव्र विभाव आते हैं उन सबसे पृथक् मैं चैतन्य हूँ—इसप्रकार बारम्बार उसकी महिमा, लगन तथा अंतरमें रटन रहना चाहिये। मैं ज्ञायक हूँ; विकल्परहित निर्विकल्पतत्त्व हूँ; विकल्पोंके छूट जानेसे मैं कहीं शून्य नहीं हो जाता, परन्तु जो अंतरमें भरा है वह प्रकट होता है। मुझमें अर्थात् ज्ञायकमात्र आत्मामें सब परिपूर्ण भरा है—इसप्रकार बारम्बार उसकी भावना–रटन–विचार–पठन करने जैसा है। ज्ञायकके प्रांगणमें टहेल लगाने जैसी है।

आपमें केवलज्ञान पूरण भया,
अनमती आप रवि-जुगनु सम हो गया ।११७।

भरतक्षेत्र के तीर्थंकर

	भूतकालके तीर्थंकर	वर्तमान तीर्थंकर	भविष्यके तीर्थंकर	महाविदेहक्षेत्रके विद्यमान बीस तीर्थंकर
१	श्री निर्वाण	श्री ऋषभदेव	श्री महापद्म	श्री सीमंधर
२	श्री सागर	श्री अजितनाथ	श्री सुरदेव	श्री युगमंधर
३	श्री महासाधु	श्री संभवनाथ	श्री सुप्रभ	श्री बाहु
४	श्री विमलप्रभ	श्री अभिनंदननाथ	श्री स्वयंप्रभ	श्री सुबाहु
५	श्री शुद्धप्रभदेव	श्री सुमतिनाथ	श्री सर्वायुध	श्री संजातक
६	श्री श्रीधरनाथ	श्री पद्मप्रभ	श्री देवपुत्र	श्री स्वयंप्रभ
७	श्री श्रीदत्तनाथ	श्री सुपार्श्वनाथ	श्री कुलपुत्र	श्री ऋषभानन
८	श्री अमलप्रभ	श्री चंद्रप्रभ	श्री उदंक	श्री अनंतवीर्य
९	श्री उद्धरदेव	श्री पुष्पदंत	श्री प्रोष्ठिल	श्री सूर्यप्रभ
१०	श्री अग्निनाथ	श्री शीतलनाथ	श्री जयकीर्ति	श्री विशालकीर्ति
११	श्री संयम	श्री श्रेयांसनाथ	श्री पूर्णबुद्ध	श्री वज्रधर
१२	श्री पुष्पांजलि	श्री वासुपूज्य	श्री अरहनाथ	श्री चंद्रानन
१३	श्री शिवगण	श्री विमलनाथ	श्री निःपाप	श्री चंद्रबाहु
१४	श्री उत्साह	श्री अनंतनाथ	श्री निःकषाय	श्री भुजंगम
१५	श्री ज्ञाननेत्र	श्री धर्मनाथ	श्री विपुलमति	श्री ईश्वर
१६	श्री परमेश्वर	श्री शांतिनाथ	श्री निर्मल	श्री नेमप्रभ
१७	श्री विमलेश्वर	श्री कुंथुनाथ	श्री चित्रगुप्त	श्री वीरसेन
१८	श्री यथार्थदेव	श्री अरनाथ	श्री समाधिगुप्त	श्री महाभद्र
१९	श्री यशोधर	श्री मल्लिनाथ	श्री स्वयंप्रभ	श्री देवयश
२०	श्री कृष्णमति	श्री मुनिसुव्रतनाथ	श्री अनिवृत्त	श्री अजितवीर्य
२१	श्री ज्ञानमति	श्री नमिनाथ	श्री जय	
२२	श्री विशुद्धमति	श्री नेमिनाथ	श्री विमल	
२३	श्री श्रीभद्र	श्री पार्श्वनाथ	श्री देवपाल	
२४	श्री शांतियुक्त	श्री महावीरस्वामी	श्री अनंतवीर्य	

भरतक्षेत्रके तीर्थंकरोंके नाम तीन चौबीसी विधानमेंसे लिये है।

गति

- **मनुष्य**
  - भोगभूमि
    - उत्तम
    - मध्यम
    - जघन्य
  - कर्मभूमिज
    - आर्य
    - अनार्य (म्लेच्छ)
- **तिर्यंच**
  - त्रस
    - दोइन्द्रिय
    - त्रिइन्द्रिय
    - चतुरिन्द्रिय
    - पंचेन्द्रिय
  - स्थावर
    - पृथ्वी
    - अग्नि
    - वायु
    - वनस्पति
    - जल
- **नरक**
  - रत्नप्रभा (धम्मा)
  - शर्कराप्रभा (वंशा)
  - बालुकाप्रभा (मेघा),
  - पंकप्रभा (अंजना),
  - धूमप्रभा (अरिष्टा)
  - तमःप्रभा (मघवी),
  - महातमप्रभा (माधवी)
- **देव**
  - भवनवासी(१०)
    - असुरकुमार
    - नागकुमार
    - विद्युत्कुमार
    - सुपर्णकुमार
    - अग्निकुमार
    - वातकुमार
    - स्तनितकुमार
    - उदधिकुमार
    - द्वीपकुमार
    - दिक्कुमार
  - व्यंतर (८)
    - किन्नर
    - किंपुरुष
    - महोरग
    - गंधर्व
    - यक्ष
    - राक्षस
    - भूत
    - पिशाच
  - ज्योतिष्क
    - सूर्य
    - चंद्रमा
    - ग्रह
    - नक्षत्र
    - तारे
  - वैमानिक
    - कल्पातीत
      - नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश पांच अनुत्तर (विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि)
    - कल्पोपपन्न(१६)
      - सौधर्म
      - ऐशान
      - सानत्कुमार
      - माहेन्द्र
      - ब्रह्म
      - ब्रह्मोत्तर
      - लांतव
      - कापिष्ट
      - शुक्र
      - महाशुक्र
      - सतार
      - सहस्रार
      - आनत
      - प्राणत
      - आरण
      - अच्युत

नोंध :

- कर्मभूमिजन्य मनुष्यमें तीन लिंग हैं। १. पुरुषलिंग, २. स्त्रीलिंग, ३. नपुंसकलिंग
- आर्यक्षेत्र : भरतक्षेत्र, ऐरावतक्षेत्र, विदेहक्षेत्र
- तिर्यंचमें संज्ञी, असंज्ञी और जलचर, नभचर, थलचर आदि भदों हैं।
- भोगभूमिमें उत्तम भोगभूमि : उत्तरकुरु, देवकुरु
- मध्यम भोगभूमि : रम्यक् क्षेत्र, हरिक्षेत्र
- जघन्य भोगभूमि : हैमवत् क्षेत्र, हरिण्य क्षेत्र
- नारकी जीव अधोलोककी सात पृथ्वीमें रहते है। उनका लिंग नपुंसक होता है।
- भवनवासी और व्यंतरदेव पृथ्वीके खरभाग और पंकभाग और तिर्यक्लोगमें निवास करते हैं।
- ज्योतिष देव पृथ्वीसे नब्बे योजनसे लेकर नौसे योजन की ऊँचाई तक अर्थात् ११० योजन तक निवास करते हैं।

(पृष्ठ १८ का शेष भाग) (मुक्तिका मार्ग)

किन्तु जब पुण्य कम हो जाता है तब पैसा कम हो जाता है। जो यह मानता है कि पैसा खर्च करनेसे कम हो जायगा उसे पुण्यके प्रति भी श्रद्धा नहीं है। जब तक पुण्य होगा तब तक पैसा नहीं घटेगा, और यदि पुण्य घट गया तो लाख उपाय करने पर पैसा नहीं रहेगा।

यह बात मात्र भाईयोंके लिए ही नहीं किन्तु बहिनोंके लिए भी इसीप्रकार है। उपर्युक्त कथन भाईयों और बहिनोंको एकसा लागू होता है। क्या मात्र पुरुष ही दान कर सकते हैं और स्त्रीयोंको दानादि कार्यमें पैसा खर्च करनेका अधिकार नहीं है? क्या स्त्री, पुरुषका मात्र खिलौना है? स्त्रीको खुश करनेके लिए कहता है कि देख, तेरे लिये गहने बनवाये हैं। जब कि वे गहने उसके हैं तो उन गहनोंको बेचकर दानमें खर्च कर देनेका अधिकार स्त्रीको है या नहीं? क्या उसका इतना ही अधिकार है कि वह अच्छी-अच्छी रसोई बनाकर तुझे जिमाया करे? पैसा खर्च करनेका भी उसका कुछ अधिकार है कि नहीं? स्त्रीको भी समझना चाहिये कि मैं पुण्य लेकर आई हूँ, मुझे भी सत्कार्यमें धन खर्च करनेका अधिकार है, मतलबके समय तो अर्धाङ्गना–अर्धाङ्गना करते हो तब फिर धन खर्च करनेमें भी मेरा आधा भाग है या नहीं है?

यदि मैं इच्छानुसार दानादि नहीं कर सकती तो फिर उस आधे भागको मुझे क्या करना है? क्या मैं उसको पूजूँ? क्या मैं रसोईघरमें ही अपनी जिन्दगी पूरी करने आयी हूँ? मुझे भी देव-गुरु-धर्मके प्रति भक्ति है, इसलिए मैं भी अपनी इच्छाके अनुसार धन खर्च करूँगी। जब मन्दिरमें भगवानके कलशों आदिकी बोली होती है तब यदि स्त्रियोंको बोली बोलनेकी इच्छा हो जाय तो उन्हें पुरुषोंसे पूछना पड़ता है। देखो तो यह कैसी रीति है? सच्चे देव, गुरु और धर्मकी पहिचान कर जब उनकी पूजा, भक्ति और प्रभावनादिमें उल्लासपूर्वक तन, मन, धन, ज्ञान और श्रद्धा इत्यादि लगाओगे तब बाह्य जैन बनोगे, तब गृहीत मिथ्यात्व छूटेगा; यह तो अभी स्थूल मिथ्यात्व छूटनेकी, व व्यवहार जैन बननेकी बात कही गई है; विशेष बात आगे कही जायगी। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ २१ का शेष भाग) (छहढाला प्रवचन)

वह ही मोक्षमार्ग है। व्यवहार तत्त्वके भेदका लक्ष और विकल्प वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है; लेकिन निश्चयके साथ व्यवहार सम्यग्दर्शनमें उन तत्त्वोंका जानपना होता है उसका यह वर्णन है। उसमेंसे जीवतत्त्वका और उसके भेदोंका वर्णन अब आगे तीन गाथामें करते हैं।।३।। (क्रमशः) ✻

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

दिये गये विकल्पमेंसे सही विकल्प पसंद करके रिक्त स्थानकी पूर्ति कीजिये।

(१) भरतक्षेत्रके बाल तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक इशान दिशामें आयी .... शिला पर होता है। (रक्त, कम्बला, पाण्डुक)

(२) सत, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और .... वह द्रव्यके लक्षण है। (जानपना, अरूपीपना, गुण-पर्याय)

(३) उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमरूप चार अवस्थाएँ .... की है। (जीव, द्रव्यकर्म, भावकर्म)

(४) अंजनगिरि, दधिमुखगिरि, रतिकर ये .... पर्वतोंके नाम है। (पंचमेरु, नंदीश्वर, कुलाचल)

(५) घातिकर्म और अघातिकर्ममें .... अभाव है। (अन्योन्य, प्रध्वंस, अत्यंत)

(६) क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि तिर्यंचका जीव आयुष्य पूर्ण करके .... गतिको प्राप्त करता है। (देव, मनुष्य, नारक)

(७) आज मार्गशीर्ष कृष्णा ग्यारसके दिन पार्श्वनाथ भगवानका जन्मकल्याणक दिन है ऐसा कहना वह .... निक्षेपका प्रकार है। (भाव, द्रव्य, स्थापना)

(८) ८४ लाख योनीके प्रकारमें दो इन्द्रिय जीवोंकी .... लाख योनी है। (दो, सात, चौदह)

(९) कोई स्त्रीको चावल साफ करते देखकर किसीने पूछा कि क्या कर रही हो ? तब उसने कहा कि मैं भात बना रही हूँ, ऐसा कहना वह................ नयका प्रकार है। (संग्रह, शब्द, नैगम)

(१०) नौ पदार्थ, छह द्रव्य और पाँच अस्तिकायका विशेष वर्णन .... शास्त्रमें आता है। (अष्टप्राभृत, पंचास्तिकाय, आत्मानुशासन)

(११) अवधिज्ञानके तीन प्रकारमें देव-नारकीको .... ज्ञान होता है। (सर्वावधि, देशावधि, परमावधि)

(१२) पूज्य गुरुदेवश्री कहते हैं कि ''जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध होता है वह भाव भी .... है।'' (ज्ञेय, उपादेय, हेय)

(१३) पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत बोल–२२०में आता है कि ''ज्ञायक परिणतिका दृढ

अभ्यास कर। शुभभावके कर्तृत्वमें संपूर्ण लोकका .... समा गया है।''
(ज्ञातापना, कर्तापना, भोक्तापना)

(१४) ज्ञानका विपरितरूप परिणमन .... कर्मके उदयसे होता है।
(मोहनीय, ज्ञानावरणीय, अंतराय)

(१५) पंचेन्द्रिय जीवके .... भेद है। (तीन, दो, पांच)

(१६) हिंसाके चार प्रकारमेंसे शत्रुसे स्वयंका बचाव करनेके लिये की जानेवाली हिंसाको .... हिंसा कहते है। (आरंभी, विरोधी, उद्यमी)

(१७) कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मासमें अष्टमीसे पूनम तक देवों द्वारा नंदीश्वर द्वीपमें की जाती पूजाको .... पूजा कहते हैं। (इन्द्रध्वज, अष्टाह्निका, चतुर्मुख)

(१८) जीव परद्रव्यके परिणाममें अंतर्व्यापक होकर आदि-मध्य-अंतमें व्याप्त होकर, उसे ग्रहण करता नहीं है, उस रूप परिणमन करता नहीं है और उस रूप उपजता नहीं है, इसलिये कर्ता नहीं है यह बात समयसार शास्त्रके .... अधिकारमें की गयी है। (संवर, आस्रव, कर्ताकर्म)

(१९) अंगबाह्य और अंग प्रविष्ट ये दो भेद .... ज्ञानके है। (श्रुत, मनःपर्यय, मति)

(२०) क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति .... पर्यायमें होती है।
(देव-मनुष्य, तिर्यंच-मनुष्य, मनुष्य)

(पृष्ठ ५ का शेष भाग) (सुप्रभातस्तोत्र)

अर्थ : जिस सुप्रभातमें भव्य जीवोंरूप कमलोंको आनन्दित करनेवाला केवलज्ञानरूप सूर्य उदयको प्राप्त होता है तथा संपूर्ण जगत् (जगत्के जीव) पाप कर्मके उदयरूप निद्रासे छूटकारा पाकर जागृत होता है अर्थात् प्रबोधको प्राप्त होता है उस जिन भगवान्के सुप्रभातकी स्तुतिस्वरूप इस सुप्रभाताष्टकको जो जीव निरन्तर पढ़ते हैं उनका पाप शीघ्र ही नाशको प्राप्त होता है तथा धर्म एवं सुख वृद्धिंगत होता है।।८।।

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) पांडुक	(६) देव	(११) देशावधि	(१६) विरोधि
(२) गुणपर्यायें	(७) द्रव्य	(१२) हेय	(१७) अष्टाह्निका
(३) द्रव्यकर्म	(८) दो	(१३) कर्तापना	(१८) कर्ता-कर्म
(४) नंदीश्वर	(९) नैगम	(१४) मोहनीय	(१९) श्रुत
(५) अन्योन्य	(१०) पंचास्तिकाय	(१५) दो	(२०) मनुष्य

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ प्रेरित तथा

श्री कहान पुष्प परिवार आयोजित

(रजत जयंति वर्ष अंतर्गत)

बाल संस्कार अध्यात्मज्ञान शिविर

अनत उपकारी परम पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद् अनन्य भक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके धर्मप्रभावना योगसे हम सभी मुमुक्षु यथार्थ मोक्षमार्गके स्वरूपको समझ सके है जिससे हम गहरे सत् ज्ञान धर्मके संस्कार हमारी भविष्यकी पीढ़ीमें उचितरूपसे दे सके हैं। यह सत्य संस्कारका सिंचन भविष्यकी पीढ़ीमें सुरक्षित रहे वह अति आवश्यक है और यह महत्वपूर्ण कार्य आखरी २४ वर्षोसे बाल संस्कार अध्यात्मज्ञान शिविर इसमें महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर रही है।

ई.स. २०२५में इस शिविरका २५वाँ वर्ष है, जो रजत-जयंतीके रूपमें समग्र भारतमें विशेषरूपसे मनाई जा रही है। इस शिविरकी श्रृंखलामें इस वर्षके प्रारम्भमें बृहद् मुंबई-मलाड प्रांतमें इसका प्रथम एकदिवसीय शिविरका आयोजन किया गया था। जिसमें करीब ५५० मुमुक्षुगुण शामिल हुए थे। जिसमें **धर्मके मूलभूत सिद्धांत (चार अनुयोग) आधारित** विषय पर अध्यापन कराया गया था। इस शिबिरके सौजन्यका लाभ मातुश्री पुष्पाबेन मनसुखलाल दोशी परिवार, मुंबई, श्री मधुसूदन न्यालचंद शाह परिवार, विलेपार्ला, मातुश्री धीरजबेन बाबुलाल शाह परिवार, घाटकोपर और वत्सल पारस महेता, घाटकोपरको मिला था।

तत्पश्चात् पूना शहरमें फ्लेम युनिवर्सिटीमें तीन दिवसीय शिविरका आयोजन हुआ था। जिसमें ७५० से अधिक मुमुक्षुओंने भाग लिया था। इस शिविरमें **'सम्यक् रत्नत्रय आराधना'** विषय पर आधारित आठ कक्षाएँ एक साथमें विविध विषयों पर अध्यापको द्वारा अध्ययन कराया गया था। यह शिविर मातुश्री शारदाबेन शांतिलाल शाह परिवार तथा श्री अनंतराय अमुलखभाई शेठ परिवारके सौजन्यसे आयोजित की गई थी।

इसी श्रृंखलामें अब इस बाल संस्कार अध्यात्मज्ञान शिविरका आयोजन हैद्राबाद, राजकोट और अहमदाबाद शहेरोंमें हो रहा हैं। जिसकी विशेष माहिती वोट्सएप माध्यमसे आप तक भेजी जायेगी।

प्रति वर्ष भांति इस वर्ष भी दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में सोनगढमें इस शिविरका विशेषरूपसे आयोजन होगा। जिसमें बालकों के लिये और बालकोंके द्वारा धार्मिक कार्निवल, सांस्कृतिक कार्यक्रम और धार्मिक क्लास द्वारा धर्मके संस्कारोंका सिंचन होगा। इस शिविरका आयोजन सोनगढमें दि. २५-१२-२५ से ३०-१२-२५ तक होगा। आप सभीको इस शिविरमें लाभ लेनेके लिये हमारा अंतरकी उर्मि सह निमंत्रण है। जिसका परिपत्र सभी मंडलोंको और वोटस्एप पर दिया जाएगा। इस शिविर सम्बन्धी सभी प्रकारकी जानकारी **Kanjiswami Songadh app** डाउनलोड करनेसे अथवा **Kanjiswami.org** पर जानेसे मिल जायेगी। रजिस्ट्रेशन आदि सम्बन्धी सूचनाएँ वोट्सएप पर दी जायेगी।

Shibir Help Line Number ✆ 8989646494

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : ३-०० से ४-०० : श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : श्री परमात्मप्रकाश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ **महावीरनिर्वाण-पंचाह्निक-महोत्सव :** प्रतिवर्षानुसार 'श्री महावीर-निर्वाण-कल्याणक' —दीपावलिका वार्षिक मंगल अवसर कार्तिक वदी-११, शुक्रवार, ता. १७-१०-२०२५ से कार्तिक वदी ३०, मंगलवार, ता. २१-१०-२०२५, पाँच दिन तक 'श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणकमंडल विधानपूजा', महावीरजिनेन्द्र भक्ति, एवं अध्यात्मज्ञानोपासना आदि विविध कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❀ **'सुप्रभातदिन' :** कार्तिक सुदी-१—नूतन वर्षारंभका 'सुप्रभातदिन' ता. २२-१०-२०२५, बुधवारके दिन सुप्रभातस्तोत्र, पूजाभक्ति एवं गुरुदेवश्रीके सुप्रभात-प्रवचन आदि विशेष समारोहपूर्वक मनाया जायेगा।

❀ **कार्तिकी-नन्दीश्वर-अष्टाह्निका :** कार्तिक सुदी ७, बुधवार, ता. २९-१०-२०२५, से कार्तिक सुदी १५, बुधवार, ता. ५-११-२०२५—तक 'पंचमेरु-नन्दीश्वर पूजनविधान' एवं अध्यात्मतत्त्व ज्ञानोपासनापूर्वक आनन्दोल्लास सह मनाया जाएगा।

(पृष्ठ १५ का शेष भाग) (अध्यात्म संदेश)

✻ सम्यग्दर्शन प्रकट होनेके कालमें तो निर्विकल्प स्वानुभूति—अवश्य होती है यह नियम है। इसके बाद अन्य समयमें सम्यक्त्वीको यह अनुभूति कभी हो, कभी न भी हो, परन्तु शुद्धात्मप्रतीति तो सदैव रहती ही है। जब उपयोगको अंतरमें एकाग्र करके निर्विकल्प स्वानुभवमें परिणामको मग्न करे तब उसे कोई विशिष्ट आनंदका वेदन होता है।

(अब आगे, इस स्वानुभवके समयमें मति-श्रुतज्ञान होनेसे इसको परोक्ष कहा है, और शास्त्रोंमें कहीं कहीं स्वानुभवको प्रत्यक्ष भी कहा है, इसके बारेमें प्रश्नोत्तरके द्वारा स्पष्टीकरण करते हैं :—) (क्रमशः) ✻

आत्मधर्म सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

आप सभी हमारे मुमुक्षु हैं। हिन्दी आत्मधर्म आपको बहुत समयसे भेज रहे है। अब ट्रस्टने निर्णय लिया है कि जो ग्राहक १५ वर्षसे अधिक समयसे है उनको अब आगामी अंक भेजना बंद किया जायेगा। यदि जिन्हें आत्मधर्म मासिक पुनः चालु करवाना चाहते हो तो वे आत्मधर्म कार्यालयको एक संमतिपत्र भेजे जिससे आपको पुनः ५ वर्षके लिये अंक रीन्यु किया जायेगा। इसलिये आप अपना उचित उत्तर (संमति पत्र) भेजे उसके अनुसार आपको अंक भेजा जायेगा।

इसके अलावा यदि आप फीझीकल कोपी नहीं चाहते हो और **email** अथवा **whatsapp** पर **PDF** चाहते हो तो उस अनुसार आपको भेजनेमें आयेगा।

आप अपना संमतिपत्र : आत्मधर्म कार्यालय अथवा मेल अथवा वोटसेप पर भेज सकते है।

आत्मधर्म कार्यालय,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (जि. भावनगर)

email contact@kanjiswami.org
Whatsapp No 9276867578

सम्मति पत्र

प्रति श्री आत्मधर्म कार्यालय

मैं ....

सूचित करता हूं कि आपके द्वारा भेजे जानेवाला आत्मधर्म अंकका हम नियमित पठन एवं स्वाध्याय करते है। तथा किसी भी प्रकारका अविनय अशातना हमारे द्वारा नहीं हो रही है। इसलिये हमारा आत्मधर्म अंक रीन्यु करनेकी विनती करते है।

आत्मधर्म फिझीकल /**email** / **whatsapp..........** .... द्वारा हमें भेज देंगे।

ग्राहक नंबर : ....

नाम : ....

पता : ....

....

....

संपर्क नंबर : ....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

● धर्मात्मा ! बालक हो, वृद्ध हो अथवा युवा हो पर "मैं ज्ञानानन्द हूँ, राग सो मैं नहीं"—ऐसा भान होनेसे जब अनुभव करता है, तब सिद्ध-समान ही आत्माका अनुभव करता है। सिद्ध जितना पूर्ण अनुभव तो नहीं किन्तु सिद्धकी जातिका ही अनुभव होता है। निज-स्वभावमें स्थिर होता है तभी आत्मतत्त्वकी अनुभूति होती है। एकदेश आनन्दकन्दका अनुभव हुआ अर्थात् स्वरूप-अनुभवकी सम्पूर्ण जाति पहचानी। सिद्धो-अर्हंतों आदिको जैसा अनुभव होता है वैसा धर्मी जान लेता है। 'अनुभव पूज्य है'। स्वयं शुद्ध-आनन्दकन्द है—ऐसी श्रद्धा-सहित अनुभव पूज्य है; वही परम है, वही धर्म है, वही जगतका सार है। आत्मानुभव तो भवसे उद्धार करता है। अनुभव तो भवसे पार लगाता है, महिमा धारण करता है, दोषका नाश करता है। आत्मशक्तिमें ज्ञान व आनन्द भरे हुए हैं। शक्तिकी व्यक्तिरूपी अनुभवसे ही चिदानन्दमें निखार आता है - वही वास्तविक विकास है।७१२।

● छद्मस्थका उपयोग एक ओर ही होता है। वह पुण्य-पापकी ओर हो तब स्वानुभवमें नहीं होता। स्वानुभुति, ज्ञानकी पर्याय है। सम्यग्दर्शन व उपयोगरूप-स्वानुभुतिको विषम-व्याप्ति है। सम्यग्दर्शन होने पर भी ज्ञान स्व में उपयागरूप हो, या न भी हो। अतः सम्यग्दर्शन व स्व-ज्ञान-व्यापर में विषम-व्याप्ति है। स्व-ज्ञान लब्धरूप होता है, सदा ही उपयोगरूप नही होता।७१४।

● प्रश्न : निर्विकल्प-दशा के समय स्व-पर-प्रकाशक स्वभाव बाधित होता है क्या ?

उत्तर : निर्विकल्पके समय ज्ञान, ज्ञानको जानता है तथा आनन्दको भी जानता है; इस प्रकार उस समय भी स्व-पर-प्रकाशकता है। ज्ञान-अपेक्षासे आनन्दको जानना भी पर है। निर्विकल्प-दशामें एक स्वज्ञेय ही जाननेमें आया—ऐसा नहीं है। ज्ञानके साथ आनन्दका भी खयाल आता है। जो स्वयं ज्ञानको जानता है वह स्व को तथा पर-रूपसे आनन्दको (दोनोंको) जानता है। इस प्रकार उस समय भी स्व-पर-प्रकाशक स्वभाव यथावत् रहता है।७१५।

● छट्ठे गुणस्थान वाला जीव अंतर्मुहूर्तमें ध्यान (निर्वकल्पमें) न आए तो छट्ठा-सातवाँ गुणस्थान नहीं रहता। चौथे-पाँचवें गुणस्थानमें लम्बे-लम्बे कालके बाद निर्विकल्प अनुभव होता है, परन्तु ज्ञान, लब्धरूपसे तो सहा ही वर्तित होता रहता है। ७१६।

● एक भी विपरीत अभिप्राय रहे तो ध्यान अथवा सम्यक्त्व नहीं होता। विपरीत अभिप्राय टल-कर, सात तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान होने पर स्व-ओर झूके, तभी अनुभव होता है—वही स्वानुभव है।७१७।

आत्मधर्म
अक्टुबर २०२५
अंक-२, वर्ष २०

Posted at Songadh PO
Publish on 5-10-2025
Posted on 5-10-2025

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org